

015,1D50,1 0035
152 H1
महेश्वर
गोविन्दराव /

015, 1D50, 1 152 H1 0035

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

[illegible]

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

‘मास्टर’ मणिमालायाः १२५ संख्याकी मणिः (नीतिवि० २)

भर्तृहरिविरचितं

नीतिमालाकम्

१४
१

सन् १९४२ वर्षीयनूतननियमानुसारेण—
काशीस्थगवर्नमेण्टसंस्कृतकालेजीय-
प्रथमपरीक्षायां स्वीकृतम् ।

‘बालमनोरञ्जनी-मनोरमा-’
टीकाद्वयोपेतम् ।

[तृतीयं संस्करणम्]

प्रणेतृ—

ख० कमलान्तकान्तशास्त्री ‘दीनबन्धुः’

प्रकाशकः—

मास्टर खेलाडीलाल ऐण्ड सन्स

मूल्यं पञ्चाणकाः ।



* श्रीः *

भर्तृहरिविरचितं

नीतिशतकम् ।

बालमनोरञ्जनी—‘मनोरमा’—नाम्निसंस्कृत-
हिन्दीटीकाद्वयोपेतम् ।

गोरक्षपुरमण्डलान्तर्गत ‘पाण्डेय भठवा’ ग्रामनिवासि-पण्डित-
श्रीभूदेवपाण्डेयानां नन्त्रा पण्डितश्रीजगदीशपाण्डे-
यानामात्मजेन, ‘दीनबन्धु’ इत्यपरनामधेयेन,
काशीस्थसरयूपारीणविद्यालयाध्यापकेन
स्व० कमलाकान्तशास्त्रिणा

विरचितम् ।

तच्च

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो, कचौड़ीगली, काशी
इत्यस्याध्यक्षैः, स्वीये ‘मास्टर

प्रिण्टिङ्ग—वर्क्स, नाम्नि

यन्त्रालये मुद्रापयित्वा

प्रकाशितम् ।

मूल्यं पञ्चाणकाः ।
क्रमांकः २३६

प्रकाशकः—

जे० एन० यादव, प्रोप्राइटर,
मास्टर खेलाड़ीलाल पेण्ड सन्स,
संस्कृत बुकडिपो,
कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

015, 1D50, 1
15241

सम्वत् १९६५/१९

● मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ●

आगत क्रमांक..... 0035

दिनांक..... 15/5/80

मुद्रकः—

श्रीमन्नालाल अभिमन्यु एम० ए०
मास्टर प्रिण्टिङ्ग वर्क्स,
बुलानाला, काशी ।



प्रिय बन्धुगण !

सन् १९४० की नवीन नियमावली के अनुसार 'गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज, बनारस' की प्रथमा-परीक्षा में द्वितीय पत्र में 'तर्कसंग्रह' को हटाकर उसकी जगह पर श्रीभर्तृहरिजी कृत 'नीतिशतक' नाम की पुस्तक रख दी गयी है। जिसमें नीति की अच्छी से अच्छी उपदेश की बातें लिखी हुई हैं। जिससे हर एक आदमी जल्दी से जल्दी नीतिकुशल हो सकता है। आजकल की परिस्थिति यह है कि हमारे कितने ही संस्कृत के पढ़े लिखे लोग व्यवहार में अकुशल रहते हैं, उन्हें आधुनिक काल के वातावरण के अनुकूल ऐसी पुस्तकों को पढ़ाने की आवश्यकता है जिससे वे साधारण नीति के आधार पर राजनीति में पटु हो जायें।

यद्यपि इस पुस्तक की भाषा सरस एवं सरल है, फिर भी आप लोगों की अल्पवयस्कता के साथ साथ सूक्ष्ममतिता भी किसको याद नहीं रहती ! अतः आप लोगों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए श्रीमान् बाबू जगन्नाथप्रसादजी यादव एवं श्रीमान् बाबू वैजनाथप्रसादजी यादव से मुझे इसकी टीका करने के लिए निदेश दिया। तदनुसार

मैंने इसकी 'बालमनोरञ्जनी' नामक संस्कृत टीका और 'मनोरमा' नामक हिन्दी टीका लिखी है। इसके साथ ही साथ श्लोकों का 'अन्वय' 'समास' 'कोष' 'सरलार्थ' भी लिखा गया है, और संस्कृत टीका में ही आवश्यक व्याकरण भी दिखाया गया है।

उपरोक्त टीकाओं में व्यर्थ पाण्डित्य नहीं दिखा कर इसे सरल एवं सुन्दर भाषा में ही लिखने का प्रयत्न किया गया है। जहाँ तक सम्भव हुआ है आप लोगों के लिए यह पुस्तक सरल से भी सरल बना दी गयी है।

अनन्तर मैं उन अपने श्रद्धेय प्रकाशकजी की पारिवारिक शान्ति एवं कुशल के लिए भगवान् शङ्कर से प्रार्थी हूँ और अपनी ओर से उन्हें धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने असंख्य मेरे प्रियबन्धुओं के हित के लिए मुझे इस कार्य में प्रोत्साहन दिया है।

मुझे यह पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तकसे आप लोगों की काफी सेवा हो सकेगी। अधिक जल्दी होने के कारण इतनी बड़ी पुस्तक के नौ दस दिन में मुद्रित होने से जो कुछ त्रुटियां रह गयीं हों उन्हें क्षमा कर मुझे अनुग्रहीत करें।

गवर्नमेंण्ट संस्कृतकालेज,
काशी।

मि० आ० शु० ११ भौमवार

निवेदक—

कमलाकान्तशास्त्री

दीनप्रसाद

द्वितीय-संस्करण

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि मुझे पुनः आप लोगों की सेवा करने के लिए आज दूसरा संस्करण लेकर आना पड़ा। इससे नीतिशतक की टीका की उपादेयता ही सिद्ध होती है। जिसके कारण एक मास की अवधि के भीतर ही दूसरा संस्करण करना पड़ा। जितनी शीघ्रता से इसका प्रथम संस्करण छपा था उतनी ही तीव्रता से इस संस्करण का भी प्रकाशन हुआ है। समस्त छात्र समाज को धन्यवाद देते हुए मैं इस संस्करण की त्रुटियों के लिए क्षमा प्रार्थी हूँ और आशा करता हूँ कि इसे भी स्वीकार कर मेरे परिश्रम को सफल करें।

अधिकश्रावणकृष्ण ११

सं० १९९६



निवेदक—

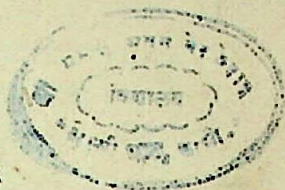
श्रीकमलाकान्तशास्त्री
'दीनबन्धु'

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक का यह तृतीय संस्करण हो रहा है । परन्तु छात्र जगत् को यह सुनकर अत्यन्त मार्मिक क्लेश होगा कि इस ग्रन्थ के विद्वान् टीकाकार अपने पार्थिव शरीर को छोड़कर सायुज्यगति को प्राप्त हो गये हैं । विधि की विडम्बना में किसी का वश नहीं है । अस्तु, विद्यार्थियों से प्रार्थना है कि वे दिवंगत आत्माकी शान्ति के लिए उनकी रचना में पूर्ववत् ही प्रेम रखें ।

ज्येष्ठ शुक्ल ११ }
सं० १९९८ }

विनीत—
प्रकाशक



* श्रीः *

श्रीमद्भर्तृहरिरचितं नीतिशतकम् ।

श्रीकमलाकान्तशास्त्रिप्रणीताभ्यां
'बालमनोरजनी'-'मनोरमा' नाम्नीभ्यां
संस्कृतहिन्दीटीकाभ्यां
संवलितम् ।

नत्वा सादरमभ्यां देवीं सङ्कष्टनाशिनीं वन्द्याम् ।
कुर्वेऽहं ह्यतिसरलां 'बालमनोरजनी' टीकान् ॥१॥
परीक्षाऽगाधपाथोदधेः पारमिच्छन्ति ये च ते ।
मामकीनामिमां टीकां मन्यन्तां तरणिं वृढाम् ॥२॥

अत्र हि कविकुलकमलदिवाकरो राजर्षिप्रवरः श्रीमद्भर्तृहरिनामा कविरुम-
यलोकसाधकं नीति-शृङ्गार-वैराग्यत्रयात्मकमिमं बुद्धिविषयीभूतं ग्रन्थं चिकीर्षुः
सदाचरणे नीतिज्ञानस्य पूर्वमपेक्षितत्वात्तज्ज्ञानाय प्रथमतो 'नीतिशतक' मारभ-
माणश्चिकीर्षितस्य ग्रन्थस्य निर्विघ्नसमाप्त्यर्थं 'ग्रन्थादौ ग्रन्थमध्ये ग्रन्थान्ते च
मङ्गलमाचरणीय' मिति मङ्गलस्याऽऽवश्यकतया 'समाप्तिकामो मङ्गलमाचरेत्'
इत्यादिश्रुतिबोधितकर्तव्यताकं नमस्कारात्मकं मङ्गलं शिष्यशिक्षायै ग्रन्थादौ
निवर्धयामि ।

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये ।

स्वानुभूत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥ १ ॥

(अन्वयः) दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये, स्वानुभूत्येकमानाय, शान्ताय, तेजसे, नमः ॥ १ ॥

(बालमनोरञ्जनी) दिक्कालाद्यनवच्छिन्नानन्तचिन्मात्रमूर्तये=प्राच्यादिदिग्-भूतादिकालत्रय-देशवय आद्यव्याप्तानन्तचिद्रूपशरीरियो, स्वानुभूत्येकमानाय=स्वानुभवैकाऽस्तित्वबोधकाय, शान्ताय=शान्तस्वरूपाय, तेजसे=प्रकाशमयाय (ब्रह्मणे), नमः=नमस्कारः, अस्त्विति शेषः । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ १ ॥

(समासः) दिक् च कालश्च दिक्कालौ, तावादी येषां तैरनवच्छिन्नाऽत एवाऽनन्ता चिन्मात्रा मूर्तिर्यस्य तस्मै तथोक्ताय । स्रस्य अनुभूतिः स्वानुभूतिः सैवैकं मानं यस्य तत् स्वानुभूत्येकमानं तस्मै ॥ १ ॥

(कोषः) 'प्राच्यवाची-प्रतीच्यस्ताः पूर्व-दक्षिण-पश्चिमाः । उत्तरा दिग्-दीची स्यात्' इत्यमरः । 'गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विप्रहः । कायो देहः क्लीब-पुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनूस्तनूः' इत्यमरः ॥ १ ॥

(सरलार्थः) यस्मिन् प्राच्यादिदिशानां, भूतभविष्यद्वर्तमानेतिकालत्रयाणाम्, आदिना देशवय आदीनां च ज्ञानं नास्ति, अत एवानन्तं चैतन्यमात्रं यच्चास्ति, यच्च स्वयमेव प्रकाशितं भवति, तच्छान्तं तेजः (ब्रह्म) नमस्करोमीत्यर्थः ॥ १ ॥

भाषामयी मनोरमा टीका लिखता आज ।

नीतिशतक के अर्थ को जाने सुजन समाज ॥ १ ॥

(मनोरमा) जिसमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम इन दिशाओं तथा भूत, भविष्य, वर्तमान इन तीन कालों आदि का ज्ञान नहीं है अर्थात् जो इनसे परे है, अतएव अनन्त और चैतन्य मात्र है, जो स्वयं ही जाना जा सकता है, ऐसे उस प्रकाशमय शान्त-ब्रह्म को नमस्कार है ॥ १ ॥

अत्रेदं पुरा वृत्तम्—ऋदाचिज्जारोगादिनाशकं तथाऽऽयुर्वर्द्धकं किमपि
फलं कुतश्चिद्वाह्यणाद्भर्तृहरिणोपलब्धं, तच्च स्वपत्न्यै भर्तृहरिणा दत्तं,
साऽप्यन्यसक्तत्वादन्यस्मै तदुपहृतवती, सोऽपि पुरुषोऽन्यासक्तत्वादन्यस्यै
प्रदत्तवान्, साऽपि भूयस्तस्मै राज्ञे दत्तवतीत्यादि सर्वं दृष्ट्वा महद्वैराग्यमापन्नो
राजाऽऽत्मसहितान्सर्वान्स्वपत्न्यादीन्निन्दति—

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता

साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः ।

अस्मत्कृते तु परितुष्यति काचिदन्या

धिक् ताञ्च तञ्च मदनञ्च इमाञ्च माञ्च ॥२॥

(अन्वयः) (अहं) यां, सततं (हृदि) चिन्तयामि, सा, मयि,
विरक्ता, (अस्ति) सा, अपि, अन्यं, जनम्, इच्छति, स, जनः (अपि)
अन्यसक्तः, अस्मत्कृते, च, अन्या, काचित्, परितुष्यति, (अतः) तां,
च, तं, च, मदनं, च, इमां, च, मां, च, धिक्, (अस्तु) ॥२॥

(बालमनोरञ्जनी) (अहं) यां=त्वां पत्नीं, सततम्=अजस्रं, (हृदि)
चिन्तयामि=स्मरामि प्रेम्णोपभोक्तुमभिलषामीत्यर्थः । सा=मद्भार्या, मयि=
मद्विषये, विरक्ता=अनुरागरहिता, अस्तीति शेषः । सा अपि=मद्भार्या अपि,
अन्यं=मदतिरिक्त, जनं=कञ्चिज्जारपुरुषम्, इच्छति=वाञ्छति, सः=तयेष्यमाणः,
जनः=पुरुषः, (अपि) अन्यसक्तः=अन्यस्त्रीजनमनस्कः, अस्मत्कृते=अस्मदर्थे,
च=तु, अन्या=अपरा, काचित्=काचित्स्त्री, परितुष्यति=सन्तोषं प्राप्नोति,
(अतः) तां=याऽस्मत्कृते परितुष्यति तामित्यर्थः । च=तथा, तम्=अन्यसक्तं
जनं, च=तथा, सर्वमिदं मदनद्वारैव सम्पाद्यत इति कृत्वा मदनं=कामदेवं, च=
अपि, इमां=मदीयां स्त्रियं, च तथा, माम्=उपस्थितं माम्, च=अपि, धिक्=
धिकारः, अस्त्विति शेषः । अत्र धिग्योगे “उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु
त्रिषु” इत्यादिना द्वितीया बोध्या । अत्र श्लोके ‘वसन्ततिलका’ नाम वृत्तम् ।
तल्लक्षणं “उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः” इत्युक्तं वृत्तरत्नाकरे ॥२॥

(समासः) अन्यस्मिन् सक्तोऽन्यसक्तः, अन्यस्यां सक्त इति वा समासो बोध्यः । अत्र “सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः” इति पुंवद्भावः ॥२॥

(कोषः) ‘सततानारताश्रान्तसन्तताविरतानिशम् । नित्यानवरताजसम्’ इत्यमरः ॥२॥

(सरलार्थः) अहं यामनिशं स्मरामि, सा मां न वाञ्छति, साऽप्यन्यं कञ्चित्पुरुषमिच्छति, परन्तु सोऽप्यन्यस्यामासक्तोऽस्ति, माञ्च पुनरन्या कञ्चिद्वाञ्छति, अतस्तां, तं जनं, तं मदनं, इमां माञ्च धिगस्त्वित्यर्थः ॥२॥

(मनोरमा) जिसकी मैं रात दिन चिन्ता करता हूँ, वह मुझे नहीं चाहती । वह भी किसी दूसरे पुरुष को चाहती है, लेकिन वह पुरुष भी किसी दूसरी (स्त्री) में आसक्त है, और दूसरी मुझ पर आशिक है । इस लिए, उस मेरी स्त्री को जो किसी दूसरे पुरुष को चाहती है, और उस पुरुष को जो उसे छोड़ दूसरी में आसक्त है और उस अन्य स्त्री को जो मुझ में प्रेम करती है और मुझे तथा उस कामदेव को भी धिक्कार है, (जो इन सबका कारण है) ॥ २ ॥

अत्र लोके हि त्रिविधा जनाः—अज्ञः सुज्ञोऽल्पज्ञश्चेति । तत्राऽऽद्यः सुखसाध्यः द्वितीयस्तु सुखतरसाध्यः, तृतीयस्त्वसाध्यः इत्याह—

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।

ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्माऽपि तं नरं न रञ्जयति ॥३॥

(अन्वयः) (यः) अज्ञः (स तु) सुखम्, आराध्यः, विशेषज्ञः (तु) सुखतरम्, आराध्यते, (किन्तु) ज्ञानलवदुर्विदग्धं, तं, नरं, ब्रह्मा, अपि, न रञ्जयति ॥ ३ ॥

(वालमनोरञ्जनी) अज्ञः=अकिञ्चिज्ज्ञः, अत्र ‘ज्ञा’ धातोः “इगुपध-ज्ञाप्रोक्तिरः कः” इति कः प्रत्ययः । न ज्ञोऽज्ञः । सुखं=सुखपूर्वकम्, सुखं यथा स्यात्तथा, अत्र “क्रियाविशेषणानां क्लीबत्वं कर्मत्वञ्च” इति बोध्यम् । आराध्यः=

प्रसादयितुं योग्यः, शिक्षणीय इत्यर्थः । विशेषेण जानातीति विशेषज्ञः= विशेषज्ञाता, ज्ञानोत्थः । सुखतरम्=अतिसुखेनेत्यर्थः । आराध्यते=सेव्यते, शिक्ष्यते इत्यर्थः । ज्ञानलवदुर्विदग्धं=ज्ञानलेशपण्डितम्मन्यं, तं=तादृशं, नरं=पुरुषं, ब्रह्मा=विधाता, अपि, न रज्जयति=न शिक्षितुं शक्नोति, न वशीकरोतीति यावत् । अत्र श्लोके 'आर्या' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा श्रुतबोधे—"यस्याः प्रथमे पादे द्वादश मात्रास्तथा तृतीयेऽपि । अष्टादश द्वितीये चतुर्थके पञ्चदश साऽऽर्या" इति ॥ ३ ॥

(समासः) ज्ञानस्य लवो ज्ञानलवस्तेन दुर्विदग्धस्तं तथोक्तम् ॥ ३ ॥

(कोषः) अज्ञे मूढ-यथाजातमूर्ख-वैधेय-बालिशाः । सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दक्षं कृशं तनु । स्त्रियां मात्रा नृटिः पुंसि लज्जलेशकणाणवः ॥ ३ ॥

(सरलार्थः) ज्ञानरहितो नरोऽल्पश्रमेणैव शिक्षयितुं शक्यः, विशेषज्ञस्तु परिश्रमातिरेकेणैव शिक्ष्यते, परन्तु मितेनैव ज्ञानेनाऽऽत्मानं पण्डितम्मन्यं नरं ब्रह्माऽपि शिक्षितुं न शक्नोति, अन्येषां तु का गणना ? इत्यर्थः ॥ ३ ॥

(मनोरमा) जो अज्ञानी पुरुष है, वह सहज में ही सिखाया जा सकता है । जो चतुर है वह सहज से भी सहज में सीख लेता है । पर, जिसमें लेश मात्र भी ज्ञान नहीं है, अथवा (जो अपने ही मद में चूर रहता है) उसे और तो क्या स्वयं ब्रह्मा भी नहीं सिखा सकते ॥ ३ ॥

मूर्खजनचित्तराधनं किमिवाऽशक्यमिति श्लोकद्वयेनोपदिशति—

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरा-

त्समुद्रमपि सन्तरेत्प्रचलदूर्भिमालाकुलम् ।

भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारये-

न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

(अन्वयः) मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्, मणिं, प्रसह्य, उद्धरेत्, प्रचलदूर्भिमालाकुलं, समुद्रम्, अपि, सन्तरेत्, (तथा) कोपितं, भुजङ्गम्, अपि, शिरसि, पुष्पवद्धारयेत्, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं, न आराधयेत् ॥ ४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्=मकराख्यजलजन्तुविशेष-
मुखदंष्ट्रमध्यात्, मणिं=रत्नं, प्रसह्य=हठात्, उद्धरेत्=निष्कासयेत्, प्रचलदू-
र्मिमालाकुलं=प्रचलत्तरङ्गपङ्क्तिव्याप्तं, समुद्रम्=अर्णवं, अपि, सन्तरेत्=पारं
गच्छेत्, (तथा) कोपितं=क्रुद्धं, भुजङ्गं=सर्पम्, अपि, शिरसि=मस्तके,
पुष्पवत्=प्रसूनमिव, धारयेत्=स्थापयेत्, तु=परन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम्=
आविष्टमूर्खजनहृदयं, न आराधयेत्=न प्रसाधयेत्, न चालयेदित्यर्थः । अत्र
श्लोके 'पृथिवी' नाम वृत्तम् । तदुक्तं तल्लक्षणां—“जसौ जसयला वसुग्रहपतिश्च
पृथिवी गुरुः” इति ॥ ४ ॥

(समासः) मकरस्य वक्त्रं मकरवक्त्रं तस्य या दंष्ट्रास्तासामन्तरं
मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरं तस्मात्तथोक्तात् । प्रचलन्त्यश्च ता ऊर्मिमालाः प्रचलदूर्मि-
मालास्ताभिराकुलस्तं प्रचलदूर्मिमालाकुलम् । मूर्खश्चासौ जनो मूर्खजनस्तस्य
चित्तं मूर्खजनचित्तं प्रतिनिविष्टश्च तन्मूर्खजनचित्तं प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तम् ॥ ४ ॥

(कोषः) अथ यादांसि जलजन्तवः । तद्भेदाः शिशुमारोद्रशङ्खो
मकरादयः । वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम् । अन्तरमवकाशावधि-
परिधानान्तर्धिभेदतादर्थ्ये । छिद्रात्मीयविनावहिरवसरमध्येऽन्तरात्मनि च । रत्नं
मणिर्द्वयोरदमजातौ मुक्तादिकेऽपि च । भङ्गस्तरङ्ग ऊर्मिर्वा स्त्रियां वीचिः
समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिः । उदन्तानुदधिः सिन्धुः सरस्वान्साग-
रोऽर्णवः । सर्पः पृदाकुर्भुजगो भुजङ्गोऽहिर्भुजङ्गमः ॥ ४ ॥

(सरलार्थः) मकरस्य मुखदंष्ट्रान्तराद्वठान्मणिं निष्कासयेत्, चञ्चल-
तरङ्गं समुद्रमपि पारं कुर्यात्, यथा पुष्पं मस्तके सर्वोऽपि धारयति तथैव क्रुद्धं
सर्पमपि शिरसि धारयेत्, परन्तु सत्यसति वा वस्तुनि आविष्टं मूर्खजनानां
चित्तं न चालयितुं शक्नुयादित्यर्थः ॥ ४ ॥

(मनोरमा) मगर (घड़ियाल) के मुँह में हाथ डालकर उसके दांतों
के बीच से 'मणि' निकाल ली जा सकती है, चञ्चल तरङ्गों वाले समुद्र को भी
हाथों के सहारे पार कर लेना आसान है, क्रोधित सर्प को भी पुष्पमाला की
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भाँति शिर पर धारण कर लेना सहज बात है, परन्तु मूर्खों के हृदय को अनुकूल कर लेना बहुत ही कठिन है ॥ ४ ॥

अपि च—

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्

पिवेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासादितः ।

कदाचिदपि पर्यटन् शशविषाणाम् आसादये-

न्न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥ ५ ॥

(अन्वयः) (कश्चित्) यत्नतः (सिकताः) पीडयन्, सिकतासु, अपि, तैलं, लभेत, (तथा) पिपासादितः, मृगतृष्णिकासु सलिलं, च, पिवेत्, कदाचित्, पर्यटन्, शशविषाणम्, अपि, आसादयेत्, तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं, न, आराधयेत् ॥ ५ ॥

(वालमनोरञ्जनी) (कश्चित्) यत्नतः तैलनिष्कासनोपायेन (सिकताः) पीडयन्=मर्दयन्, सिकतासु=बालुकासु, अपि, तैलं, लभेत=प्राप्नुयात्, (तथा) पिपासादितः=तृषापीडितः, मृगतृष्णिकासु=मृगजलेषु, सलिलं=वारि, जलमित्यर्थः । च=कदाचित्, पिवेत्=पातुं प्राप्नुयात्, कदाचित्=कस्मिंश्चित्काले पर्यटन्=भ्राम्यन्, भ्रमणशीलः पुरुष इत्यर्थः । शशविषाणं=मृगविशेषभृङ्गं (यद्वद्वाणां सृष्टमेव न तद्) अपि, आसादयेत्=प्राप्नुयात्, तु=परन्तु, प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तं न आराधयेत् । अत्र श्लोकेऽपि 'पृथिवी' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वतोऽवधेयम् ॥ ५ ॥

(समासः) पातुमिच्छतीति पिपासति, पिपासतीति पिपासा तयाऽदितः पिपासादितः । मृगाणां तृष्णिकास्तासु । शशस्य विषाणं शशविषाणम् । 'प्रतिनिविष्टे' त्यत्र समासः पूर्वतोऽवधेयः ॥ ५ ॥

(कोषः) आपः स्त्री भूम्नि वारिवारि सलिलं कमलं जलम् । गन्धर्वः शरभोः रामः सुमरोः गवयः शशः । इत्यादयो मृगेन्द्राद्या गवायाः पशुजातयः । अतस्त्रिषु विषाणं स्यात्पशुभृङ्गेभदन्तयोः ॥ ५ ॥

(सरलार्थः) यत्नतो बालुकास्वपि तैलं प्राप्नुयात्, मृगजलेष्वपि जलं पिबेत्, ब्रह्मणाऽसृष्टमपि, शशशृङ्गं प्राप्नुयात्, परन्तु मूर्खजनचित्ताराधनं न कर्तुं शक्नुयादित्यर्थः ॥ ५ ॥

(मनोरमा) अगर कोई बालू से तेल निकालना चाहे, तो वह निकाल सकता है, मृगजला के जल से भी जल पी सकता है, खरगोश के शिर पर सींग (जिसको ब्रह्मा ने बनाया ही नहीं है, उसे) पा सकता है, परन्तु मूर्ख जन को प्रसन्न कर लेना शक्ति से बाहर है ॥ ५ ॥

खलजनाः केनाऽप्युपायेन सन्मार्गे न वर्तयन्तीत्याह—

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते
छेतुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रान्तेन संनह्यते ।
माधुर्यं मधुविन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैः सुधास्यन्दिभिः ॥६॥

(अन्वयः) यः, सतां, पथि, सुधास्यन्दिभिः, सूक्तैः खलान्, नेतुं वाञ्छति, असौ, व्यालं, बालमृणालतन्तुभिः, रोद्धुं समुज्जृम्भते, (तथा) वज्रमणीन्, शिरीषकुसुमप्रान्तेन, छेतुं संनह्यते, (तथा) क्षाराम्बुधेः, माधुर्यं मधुविन्दुना, रचयितुम्, ईहते ॥ ६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) यः=यः पुरुषः सतां=सज्जनानां, पथि=मार्गे, सुधां स्यन्दन्ते तच्छीलास्तैः सुधास्यन्दिभिः=अमृतवर्षिभिः, सूक्तैः=सुभाषितैः, खलान्=दुर्जनान्, नेतुं=प्रसादयितुं, वाञ्छति=अभिलषति, असौ=सः, व्यालं=सर्पं दुष्टगजं वा, बालमृणालतन्तुभिः=कोमलकमलविसतन्तुभिः, रोद्धुं=बद्धुं, समुज्जृम्भते=सम्यक् चेष्टते, (तथा) वज्रमणीन्=हीरकमणीन्, शिरीषकुसुमप्रान्तेन='शिरीष' पुष्पविशेषप्रान्तभागेन, छेतुं=भेतुं, संनह्यते=संनद्धो भवति, (तथा) क्षाराम्बुधेः=क्षारजलसमुद्रस्य, माधुर्यं=मृष्टजलत्वं, मधुविन्दुना=माक्षिकविन्दुना, रचयितुं=कर्तुम्, ईहते=चेष्टते । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं'

नाम वृत्तम् । तल्लक्षणन्वित्यम्—“सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलवि-
क्रीडितम्” इति ॥ ६ ॥

(समासः) मृणालानां तन्तवो मृणालतन्तवः, बालाश्च ता मृणालत-
न्तवो बालमृणालतन्तवस्ताभिस्तथोक्ताभिः । शिरीषकुसुमस्य प्रान्त-
स्तेन तथोक्तेन । क्षारश्वासावम्बुधिः क्षाराम्बुधिस्तस्य । मधुनो विन्दुर्मधुवि-
न्दुस्तेन ॥ ६ ॥

(कोषः) ‘व्यालो दुष्टगजे सर्पे’ इति मेदिनी । ‘भेद्यलिङ्गः शठे
व्यालः पुंसि श्वापद-सर्पयोः’ इत्यमरः । वज्रोऽस्त्री हीरके पवौ । शिरीषस्तु
कपीतनः । मधु क्षौद्रं माक्षिकादि ॥ ६ ॥

(सरलार्थः) यः स्वीयैरमृतसदृशैर्वचोभिर्दुर्जनान्प्रसादयितुं वाञ्छति,
स कोमलकमलदण्डतन्तुभिर्दुष्टगजं, सर्पं वा रोद्धुं वाञ्छति, शिरीषपुष्पैर्हीर-
कमणीन् छेतुमभिलषति क्षारजलस्य सागरस्य माधुर्यं मधुविन्दुना विरच-
यितुञ्च वाञ्छतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

(मनोरमा) जो अपने अमृत के समान मीठे वचनों से दुष्टों को
प्रसन्न करना चाहता है वह (मानो) कोमल कमल की दण्डी के तन्तुओं
से दुष्टगज या सर्प को पकड़ना चाहता है, शिरीष के कुसुमों से वज्रमणियों
को छेदना चाहता है, और खार जल वाले समुद्र को मधु के विन्दु मात्र से
मीठा करना चाहता है ॥ ६ ॥

एतेनाद्यजनानामज्ञताऽऽवरणोपायं वदति—

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा

विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।

विशेषतः सर्वविदां समाजे

विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥ ७ ॥

(अन्वयः) विधात्रा, अज्ञतायाः, छादनं, मौनं, विनिर्मितं, स्वायत्तम्, एकान्तगुणं, विशेषतः, सर्वविदां, समाजे, अपण्डितानां, विभूषणम् ॥ ७ ॥

(बालमनोरञ्जनी) विधात्रा=ब्रह्मणा, न जानातीत्यज्ञस्तस्य भावस्तत्ता तस्याः । अज्ञतायाः=मौख्यस्य, छादनम्=आवरणं, मौनं=मूकीभावं, विनिर्मितं विरचितम् । कीदृशं मौनमित्यत आह-स्वायत्तं=स्वाधीनीकृतम्, एकान्तगुणं=गुणातिशयं, विशेषतः=विशेषेण, सर्वविदां=सर्वज्ञानां, समाजे=सभायाम्, अपण्डितानां=सदसद्विचारशून्यानां, विभूषणम्=अलङ्करणं, भवतीति शेषः । अज्ञानां स्वाज्ञानस्य कृते मौनातिरिक्तस्तदावरणोपायो नास्तीति भावः । अत्र श्लोके 'इन्द्रवज्रा' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा-'स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः' इति ॥ ७ ॥

(समासः) स्वस्य आयत्तं स्वायत्तम् । एकान्ता अतिशयिता गुणा यस्मिस्तत् । सर्वं विदन्तीति सर्वविदस्तेषाम् । पण्डा सज्जाता येषां ते पण्डिताः, न पण्डिता अपण्डितास्तेषामपण्डितानाम् ॥ ७ ॥

(कोषः) अधीनो निज्ज आयत्तः । तीव्रैकान्त-नितान्तानि ॥ ७ ॥

(सरलार्थः) ब्रह्मणा मूर्खाणां कृते स्वाज्ञताछादनं मौनमेवास्तीत्यु- पदिष्टम् । क्वचिदपि मूर्खैर्मौनमेवाऽवलम्ब्य स्थातव्यम् । विदुषां सभायान्त्व- वश्यमेव न तैः किञ्चिद्वक्तव्यमित्यर्थः ॥ ७ ॥

(मनोरमा) मूर्खों के लिए अपनी मूर्खता न प्रकट करने का एकमात्र उपाय ब्रह्मा ने मौन रहना ही बनाया है । विशेष कर मूर्खों को पण्डितों की सभा में नहीं बोलना चाहिए, यही उनके लिये भूषण है ॥ ७ ॥

अल्पज्ञानादभिमानो भवति विशेषज्ञानात्तदभाव इति सोदाहरणं वदति—

यदा किञ्चिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवं

तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलितं मम मनः ।

यदा किञ्चित्किञ्चिद्बुधजनसकाशादवगतं

तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ॥८॥

(अन्वयः) यदा, अहं, किञ्चिज्ज्ञः, द्विपः, इव, मदान्धः, समभवं, तदा, सर्वज्ञः, अस्मि, इति, मम, मनः, अवलिप्तम्, अभवत्, यदा, बुधजन-सकाशात्, किञ्चित्किञ्चित्, अवगतं, तदा, मूर्खः, अस्मि, इति (मम मनो-ऽभवदिति पूर्वेणाऽन्वयः) (ततः) ज्वर, इव, मे, मदः, व्यपगतः ॥ ८ ॥

(बालमनोरञ्जनी) यदा=यस्मिन्, काले, अहम्=एषोऽहं, किञ्चिज्ज्ञः=अल्पज्ञः, द्वाभ्यां मुखशुण्डाभ्यां पिवतीति द्विपः=दन्ती, गज इत्यर्थः । इव=यथा, मदान्धः=कार्याऽकार्यविवेकरहितः, समभवम्=आसं, तदा=तस्मिन् काले, सर्वज्ञः=विदितसर्वतत्त्वः, अस्मि=वर्ते, इति=इत्थं, मम=मे, मनः=मानसम्, अवलिप्तं=गर्वितम्, अभवत्=जातं, यदा=यस्मिन् काले, बुधजनसकाशात्=पण्डितजनसकाशात्, किञ्चित्किञ्चित्=ईषदीषत्, अवगतं=शास्त्रादिज्ञानं प्राप्तं, तदा=तस्मिन्समये, मूर्खः=अज्ञः, अत्र मुखतीति विग्रहे 'मुह' धातोः "मुहेः खो मूर्ख" इति मुहो मुरादेशश्च कृतः । अस्मि=वर्ते, इति=इत्थं, मम मनोऽभवदिति पूर्वतो बोध्यम् । (ततः) ज्वरः=ज्वरनामा रोगविशेषः, इव=यथा ज्वरस्तथेत्यर्थः, मे=मम, मदः=दर्पः व्यपगतः=विनष्टः । यथा सदौषधेन ज्वरो प्रणश्यति, तथैव विद्वज्जनसम्पर्कात्प्राप्तेन ज्ञानेन मम सर्वज्ञत्वाभिमानो नष्ट इति भावः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं यथा छन्दोमन्त्रे—'रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी' इति ॥ ८ ॥

(समासः) मदेन अन्धो मदान्धः । बुधाश्च ते जना बुधजनास्तेषां सकाशाद्बुधजनसकाशात् ॥ ८ ॥

(कोषः) दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः । स्वान्तं हन्मानसं मनः । अज्ञे मूढ-यथाजात-मूर्ख-वैधेय-बालिशः ॥ ८ ॥

(सरलार्थः) यदाऽल्पज्ञानवानहं द्विप इव मदान्धः समभवं, तदा 'महापण्डितोऽह' मिति बुद्ध्याऽवलिप्तः । यदा पण्डितजनसंसर्गाच्छास्त्रादिज्ञानं

प्राप्तं तदा 'मूर्खोऽस्मि' इति सदौषधेन ज्वर इव विद्वज्जनसकाशात्प्राप्तेन ज्ञानेन मे 'सर्वज्ञोऽस्मि' इत्यभिमानो विनष्टोऽभवदित्यर्थः ॥ ८ ॥

(मनोरमा) जब मुझ में थोड़ा ज्ञान था तो मैं उतने ही से मतवाले हाथी की भाँति अन्धा हो गया, और अपने को 'सर्वज्ञ' समझ लिया। जब मुझे विद्वानों के पास उठते बैठते कुछ शास्त्रादिक ज्ञान होने लगा, तब मैंने अपने को 'मूर्ख' समझ लिया, और मेरे अन्दर से अपने सर्वज्ञ होने का अभिमान इस तरह दूर हो गया। जैसे अच्छी दवा के सेवन से शरीर के अन्दर से ज्वर भाग जाता है ॥ ८ ॥

एतेन श्लोकेन तुच्छविषयेषु बुद्धं जनं निन्दति—

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धि जुगुप्सितं

निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम् ।

सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शङ्कते

न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्युताम् ॥९॥

(अन्वयः) कृमिकुलचितं, लालाक्लिन्नं, विगन्धि, (अत एव) जुगुप्सितं, निरामिषं, नरास्थि, निरुपमरसं, प्रीत्या, खादन्, श्वा, पार्श्वस्थं, सुरपतिं, विलोक्य, अपि, न शङ्कते, हि, क्षुद्रः, जन्तुः, परिग्रहफल्युतां, न गणयति ॥९॥

(बालमनोरञ्जनी) कृमिकुलचितं=कीटसमूहव्याप्तं, लालाक्लिन्नं=मुख-मलार्द्रं, विगन्धि=दुर्गन्धम् (अत एव) जुगुप्सितं=निन्दितं, निरामिषं=निर्मांसं, शुष्कमित्यर्थः । नरास्थि=मनुष्यशरीरास्थि, निरुपमरसं=अपूर्वस्वादं, प्रीत्या=प्रीतिपूर्वकं, खादन्=भुञ्जन्, श्वा=शुनकः, पार्श्वस्थं=निकटस्थितं, सुरपतिं=देवराजम्, इन्द्रमित्यर्थः । विलोक्य=अवलोक्य, अपि, न=ना, शङ्कते=लज्जते, हि=यतः, क्षुद्रः=अल्पः, जन्तुः=प्राणी, परिग्रहफल्युतां=गृहीतस्य वस्तुनस्तु-च्छतां, न=न, गणयति=मनुते, किन्त्वतितुच्छं लौकेर्निन्दितमपि कर्म करोत्येवेति तात्पर्यम् । अत्र श्लोके 'हरिणी' नाम वृत्ताम् । तल्लक्षणं यथा—'रसयुगहयैन्सौ औ स्तौ यदा हरिणी तदा' इति ॥ ९ ॥

(समासः) कृमीणां कुलानि कृमिकुलानि तैश्चितं कृमिकुलचितम् ।
लालया क्लिन्नं लालाक्लिन्नम् । विनष्टो गन्धो विगन्धः, स अस्त्यस्मिस्तत् ।
निर्गतमामिषं यस्मात्तत् । नरस्याऽस्थि नरास्थि । निर्गता उपमा यस्य स
निरुपमः, एवं भूतो रसो यस्मिन् यथा स्यात्तथा । सुरस्य पतिः सुरपतिस्तम् ।
परिग्रहस्य फल्गुता परिग्रहफल्गुता ताम् ॥ ६ ॥

(कोषः) सृणिका स्यन्दिनी लाला । आर्द्रं सार्द्रं क्लिन्नम् । शुनको भषकः
श्वा स्यात् ॥ ६ ॥

(सरलार्थः) कीटानां समूहैर्ब्याप्तं लालयाऽऽर्द्राभूतं दुर्गन्धयुक्तमत एव
निन्दनीयं मांसरहितं मनुष्यदेहास्थि, अनुपमरसं प्रीतिपूर्वकं खादन् कुक्कुरः
खसन्निधौ विराजमानमिन्द्रमपि विलोक्य न किञ्चिच्छजते, यतः क्षुद्रो जन्तुर्य-
द्वस्तु गृह्णाति, तत्तच्छ्रुतां न गणयतीत्यर्थः ॥ ६ ॥

(मनोरमा) कीड़ों से भरी हुई, लार से भीगी हुई, दुर्गन्धयुक्त अत
एव निन्दित, अपूर्व रस वाली, तथा मांस रहित मनुष्य की हड्डी को चबाता
हुआ कुत्ता अपने पास खड़े हुए इन्द्र को भी देखकर नहीं शर्माता, क्योंकि
नीच प्राणी जिस वस्तु को ग्रहण कर लेता है उसकी छोटाई का विचार नहीं
करता ॥ ६ ॥

अथः पतन् पुरुषः क्षुद्रपदमेव प्राप्नोति नोच्चपदमित्याह—

शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरं

महीध्रादुचुक्त्वा दबनिमवनेऽपि जलधिम् ।

अधोऽधो गङ्गायं पदमुपगता स्तोकमथवा

विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥ १० ॥

(अन्वयः) इयं, गङ्गा, स्वर्गात्, (प्रथमं) शार्वं, शिरः, (प्रति)
पतति, तत्, शिरसः, क्षितिधरम्, उचुक्त्वा, महीध्रात्, अवनिं, (पतति),
अवनेः, च, अपि, जलधिं (पतति), (एवं क्रमेण) अधः, अधः, (पतन्ती),
स्तोकं, पदम्, उपगता, अथवा, विवेकभ्रष्टानां, विनिपातः, शतमुखः, भवति ॥ १० ॥

(बालमनोरञ्जनी) इयम्=एषा विष्णुपदनिःसृता, गङ्गा=भागीरथी, स्वर्गात्=स्वर्लोकात् (प्रथमं) शर्व=शैवं, शिरः=मस्तकं, पतति, तत्=ततः, शिरसः=मस्तकात्, क्षितिधरं=हिमालयपर्वतं, पततीति पूर्वेषाऽन्वयः । उत्तुङ्गात्=अत्युच्चास्थानात्, महीं धरतीति महीध्रः, अत्र मूलविभुजादित्वात्कः, तस्मात् महीध्रात्=पर्वतात्, अवर्नि=भूमिं, पततीति पूर्वाऽन्वयि । अवनेः=भूमितलात्, च=तथा, अपि, जलधिः=समुद्रं, (पतति), (एवं क्रमेण) अधोऽधः=अधोभागं, (पतन्ती), स्तोकम्=अल्पं, पदं=स्थानम्, उपगता=प्राप्ता । अथवा=चा, विवेकभ्रष्टानां=सदसद्विचारशून्यानां, विनिपातः=विशेषेण पतनं, शतमुखः=अनेकविधः, भवति=जायते । एवं रीत्या यथा गङ्गा उच्चस्थानात्पतन्ती क्रमेणाधोऽध एव पतति, तथैव नरोऽपि उच्चपदात्पतन् सन् पुनरुच्चपदं न प्राप्नोतीति भावः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् । तद्वक्ष्यमाणम्-अष्टमश्लोकटीकायामनुसन्धेयम् ॥ १० ॥

(समासः) क्षितेर्धरः क्षितिधरस्तम् । विवेकाद्भ्रष्टा विवेकभ्रष्टास्तेषाम् । शतानि मुखानि यस्य सः शतमुखः ॥ १० ॥

(कोषः) महीध्रे शिखरिण्यभृदहार्यधरपर्वताः । गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी इमाऽवनिर्मेदिनी मही । स्तोकाल्पशुद्धकाः, सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु ॥ १० ॥

(सरलार्थः) पतितपावनी इयं गङ्गा प्रथम विष्णुपदान्निःसृत्य शङ्करस्य मस्तकं, प्रति पतति, पुनस्तस्माच्छिरसो हिमालयपर्वतं पतति, ततोऽपि भूमिं पतति, तदनन्तरं जलधिं, पतति । एवं क्रमेण अधोभागं पतन्ती पुनः पुनरधोऽध एव पतति, न तु प्राथमिकं वैष्णवं शैवं वा पदम् । अनयैव रीत्या उच्चपदात्पतन् पुरुषः पुनरुच्चपदं न प्राप्नोति । अथवा सदसद्विचाररहितानां पतनं बहुविधं भवतीत्यर्थः ॥ १० ॥

(मनोरमा) (विष्णुपद से निकली हुई) यह गङ्गा स्वर्ग लोक से पहले शिव के शिर पर गिरी, फिर वहाँ से पर्वत पर गिरी और फिर वहाँ से पृथिवी पर गिरी और फिर पृथिवी से समुद्र में जाकर मिल गयी । अथवा

यह ठीक है कि जब मनुष्य को अच्छे बुरे का विचार नहीं रह जाता, तो उसके नाश के लिए सैकड़ों रास्ते बन जाते हैं ॥ १० ॥

निखिलोपद्रवनिवर्तकोपायः शास्त्रलोकयोर्दृष्टः, न कापि मूर्खबोधकोपायः
इत्यत आह—

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्छत्रेण सूर्यातपो

नागेन्द्रो निशिताङ्कुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ ।

व्याधिर्भेषजसङ्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषं

सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥ ११ ॥

(अन्वयः) हुतभुक्, जलेन, वारयितुं, शक्यः, सूर्यातपः, छत्रेण,
(वारयितुं शक्यः) (तथा) समदः, नागेन्द्रः निशिताङ्कुशेन, (वा० श०)
(तथा) गोगर्दभौ, दण्डेन, (वा० श०) व्याधिः, भेषजसङ्ग्रहैः, (वा० श०)
च, विषं, विविधैः, मन्त्रप्रयोगैः (वा० श०) (एवं) सर्वस्य, शास्त्रविहितम्,
औषधम्, अस्ति, (परन्तु) मूर्खस्य, औषध, न, अस्ति ॥ ११ ॥

(वालमनोरञ्जनी) हुतं भुङ्क्ते इति हुतभुक्=अग्निः, जलेन=वारिणा,
वारयितुं=शमयितुं, शक्यः=योग्यः, सूर्यातपः=उष्णत्वं, छत्रेण=आतपत्रेण,
(वा० श०) (तथा) समदः=मदयुक्तः, नागेन्द्रः=गजेन्द्रः निशिताङ्कुशेन=
तीक्ष्णाङ्कुशेन, (वा० श०) (तथा) गोगर्दभौ=गोखरौ, दण्डेन=लघुदण्डेन
(वा० शक्यौ), व्याधिः=रोगः, भेषजसङ्ग्रहैः=औषधसेवनैः, (वा० श०)
च=तथा, विषं=गरलं, विविधैः=अनेकैः, मन्त्रप्रयोगैः=मन्त्रोच्चारणैः (वा०
श०) (एवं) सर्वस्य=सम्पूर्णस्य, उपद्रवस्येति यावत् । शास्त्रविहितं=शास्त्र-
द्वारा प्रतिपादितम्, औषधं=निवर्तकोपायः, अस्ति=विद्यते, (परन्तु) मूर्खस्य=
अज्ञस्य, औषधं शास्त्रोक्तो लौकिको वा कश्चन मौख्यविधातकोपायः, न=ना,
अस्ति=विद्यते । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं
यथा-षष्ठश्लोके प्रतिपादितम् ॥ ११ ॥

(समासः) सूर्यस्याऽऽतपः । मदेन सहितः समदः । नागानामिन्द्रो नागेन्द्रः । निशितञ्च तदङ्कुशं निशिताङ्कुशं तेन । गौश्च गर्दभश्च गोगर्दभौ । भेषजस्य सङ्ग्रहा भेषजसङ्ग्रहास्तैस्तथोक्तैः । मन्त्राणां प्रयोगा मन्त्रप्रयोगास्तैः मन्त्रप्रयोगैः । शास्त्रेण विहितं शास्त्रविहितम् ॥ ११ ॥

(कोषः) हिरण्यरेता हुतभुक् । प्रकाशो द्योत आतपः । निशितश्चात-
शातानि तेजिते । अङ्कुशोऽस्त्री सृणिः स्त्रियाम् । चक्रीवन्तस्तु वालेया रासभा
गर्दभाः खराः । दण्डोऽस्त्री लघुडेऽपि स्यात् । क्ष्वेडस्तु गरलं विषम् ॥ ११ ॥

(सरलार्थः) जलेनाऽग्नेः शान्तिर्भवितुमर्हति, आतपत्रेण सूर्यातपो
वारयितव्यः, निशिताङ्कुशेन मदान्वितो गजराजो वश्यो भवितुमर्हति, गौर्ग-
र्दभश्चापि दण्डेन वारयितव्यः, औषधानां सेवनैर्व्याधेशान्तिर्भवितुं शक्नोति,
विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषश्चापि शान्तिं गच्छतीत्येवं सर्वोपद्रवशान्तये शास्त्रविहित-
मौषधं वर्तते, परन्तु मूर्खस्य मूर्खताविनाशाय न किमप्यौषधं शास्त्रोक्तं लौकिकं
वाऽस्तीत्यर्थः ॥ ११ ॥

(मनोरमा) जल से आग बुझा दी जा सकती है, सूर्य के ताप को
छाता के सहारे सहा जा सकता है, मतवाले हाथी को तीखे अङ्कुश से वश में
किया जा सकता है, गौ तथा गदहों को दण्डों के द्वारा वश में किया जा सकता
है, औषधों के सेवन से व्याधि भी शान्त हो सकती है, विष को भी अनेक
मन्त्रों के प्रयोगों से शान्त कर सकते हैं—इस तरह सभी प्रकार के उपद्रवों की
दवा शास्त्र में है, परन्तु मूर्खों की मूर्खता दूर करने की कोई दवा नहीं है ॥ ११ ॥

साहित्यशालाचनभिर्ज्ञो नराकारोऽपि पशुरेवेत्याह—

साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः

साक्षात्पशुः पुच्छविषाणहीनः ।

तृणं न खादन्नपि जीवमान—

स्तद्भागवेयं परमं पशूनाम् ॥ १२ ॥

(अन्वयः) साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः, (नरः) पुच्छविषाणहीनः, साक्षात्, पशुः, (एव), तृणं, न, खादन्, अपि, जीवमानः, (इति यत्), तत्, पशूनां, परमं, भागधेयम् ॥१२॥

(बालमनोरञ्जनी) साहित्य-सङ्गीत-कलाविहीनः=काव्याऽलङ्कारादि-गानादि-शिल्परहितः, (नरः) पुच्छविषाणहीनः=लाङ्गूलशृङ्गरहितः, साक्षात्=प्रत्यक्षं, पशुः=जन्तुः, (एव) । ननु पशवस्तृणं भक्षयन्ति, अयं पुनः कथं न खादतीत्यत आह-तृणमिति । तृणम्=अर्जुनं, न=ना, खादन्=भक्षयन्, अपि, जीवमानः=प्राणान् दधानः, (इति यत्) तत्, पशूनां=जन्तूनां, परमम्=उत्कृष्टं, भागधेयम्=अदृष्टं, दैवमित्यर्थः । अन्यथा तेषां तृणादिभक्षणा-लाभाज्जीवनमपि न स्यादिति भावः । तस्मादवश्यमेव मनुष्येण साहित्यादिकं ज्ञेयमिति तात्पर्यम् । अत्र श्लोके 'उपजाति' नाम वृत्तम् । तस्य लक्षणन्वेवम्—“स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः । उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ । अनन्तरोदी-रितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः” इति ॥१२॥

(समासः) साहित्यश्च सङ्गीतश्च कला च साहित्यसङ्गीतकलास्ता-भिर्विहीनः साहित्यसङ्गीतकलाविहीनः । पुच्छश्च विषाणञ्च पुच्छविषाणो-ताभ्यां हीनः पुच्छविषाणहीनः ॥१२॥

(कोषः) पुच्छोऽस्त्री लूमलाङ्गूले । अतस्त्रिषु विषाणं स्यात्पशुशृङ्गे । तृणमर्जुनम् । दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः ॥१२॥

(सरलार्थः) यः साहित्यं, सङ्गीतं, कलाञ्च न जानाति, स नरः पुच्छशृङ्गरहितः साक्षात्पशुरेवाऽस्ति, तृणं न भक्षयन्नपि जीवमान इति यदस्ति तत्पशूनामुत्कृष्टं भागधेयमस्ति, तस्मान्मनुष्येणाऽवश्यमेव साहित्यादिज्ञानं सम्पादनीयमित्यर्थः ॥१२॥

(मनोरमा) जो आदमी साहित्य, सङ्गीत तथा कलाओं को नहीं जानता, वह पूँछ और सींग से रहित पशु हो है, वह तृण को न खाकर भी जीता है, यह पशुओं का बहुत बड़ा भाग्य है ॥१२॥

विद्यादिविहीनाः पशुभूताः कथं भूमौ मनुष्यरूपेण सञ्चरन्तीत्याह —

येषां न विद्या न तपो न दानं

ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता

मनुष्यरूपेण

मृगाश्चरन्ति ॥१३॥

(अन्वयः) येषां, विद्या, न, तपः, न, दानं, न, ज्ञानं, न, शीलं, न, गुणः, न, धर्मः, न, ते, मृगाः, (नराः), भुवि, भारभूताः, मनुष्यरूपेण, चरन्ति ॥१३॥

(बालमनोरञ्जनी) येषां=नराणां, विद्या=वेदव्याकरणादिः, न=नास्ति, तपः=व्रतोपवासादिः, न=नास्ति, दानं=सत्पात्रे गवादिधनसमर्पणं, न=नास्ति, ज्ञानं=शास्त्रीयं व्यावहारिकं च चातुर्यं, न=नास्ति, शीलं=सद्बृत्तं, न=नास्ति, गुणः=सत्त्वगुणः, धर्मः=सदाचरणादिः, न=नास्ति, ते=तादृशाः, मृगाः=पशुभूताः (नराः) मर्त्यलोके=मनुष्यलोके, भुवि=पृथिव्यां, भारभूताः=भाररूपेण सन्तः, मनुष्यरूपेण=नररूपेण, चरन्ति=सञ्चरन्ति । अत्र श्लोकेऽपि 'उपजाति' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वं प्रेक्षणीयम् ॥१३॥

(समासः) मृत्योलोको मृत्युलोकस्तस्मिन् मृत्युलोके । मनुष्यस्य रूपं मनुष्यरूपं तेन ॥१३॥

(कोषः) तपः कृच्छ्रादि कर्म च । त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जन-विसर्जने । मृगः पशौ कुरङ्गे च ॥१३॥

(सरलार्थः) येषां मनुष्याणां विद्या, तपो, दानं, ज्ञानं, शीलं, गुणो, धर्म, एष्वेकमपि नास्ति, ते इह लोके पृथिव्यां भारभूता मनुष्यरूपेण साक्षात्पशुभूताः सन्तश्चरन्तीत्यर्थः । एतेन पशुत्वविघातकविद्यादिकमवश्यमेव पुरुषेण सम्पाद्यमिति सूचितमिति तात्पर्यम् ॥१३॥

(मनोरमा) जिसको विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण, धर्म, इनमें से कुछ भी नहीं है, वे इस संसार में मनुष्यों के रूप में वसुन्धरा के भार-स्वरूप साक्षात् पशु होकर घूमा करते हैं ॥ १३ ॥

पर्वतादौ वन्यैः सह भ्रमणमेवोचितं किन्तु नोचिनो मूर्खजनसंसर्गः स्वर्गे-
ऽपीत्याह—

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह ।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभवनेष्वपि ॥ १४ ॥

(अन्वयः) पर्वतदुर्गेषु, वनचरैः, सह, भ्रान्तं, वरं, (किन्तु) सुरेन्द्र-
भवनेषु, अपि, मूर्खजनसम्पर्कः, न ॥ १४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) पर्वतदुर्गेषु=गन्तुमशक्येष्वपि स्थानेषु, वनचरैः=
वन्यैः, व्याघ्रादिभिरिति यावत् । अत्र वनेषु चरन्तीति विग्रहे “चरेष्टः” इति
उः । सह=सार्द्धं, भ्रान्तं=भ्रमणम्, अत्र भावे क्तः । वरम्=उचितम्, अस्तीति
शेषः । (परन्तु) सुरेन्द्र भवनेषु=इन्द्रभवनेषु, अपि, मूर्खजनसम्पर्कः=मूर्खजन-
संसर्गः, न=न, भवति । अत्र श्लोके ‘अनुष्टुप्’ वृत्तम् ॥ १४ ॥

(समासः) सुराणामिन्द्रः सुरेन्द्रस्तस्य भवनानि तेषु । मूर्खश्चासौ
जनो मूर्खजनस्तस्य सम्पर्कः ॥ १४ ॥

(कावः) अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम् । सार्धं तु साकं सत्रा
समं सह ॥ १४ ॥

(सरलार्थः) गन्तुमशक्येष्वपि स्थानेषु (पर्वतादिषु) व्याघ्रादिभिः
सह भ्रमणमुचितमस्ति, परन्तु इन्द्रभवनेष्वपि मूर्खजनस्य संसर्गो न युक्त
इत्यर्थः । एतेन मूर्खजनसम्पर्को निन्वोऽस्तीति सूचितमिति तात्पर्यम् ॥ १४ ॥

(मनोरमा) अनेक प्रकार के भयङ्कर व्याघ्रादिक जन्तुओं के साथ
पर्वतों और जंगलों में का रहना समुचित है, परन्तु इन्द्र भवनों में भी
भूखों के साथ रहना अच्छा नहीं ॥ १४ ॥

यस्य नृपस्य देशे कवयो निर्धनाः सन्ति, स दोषो नृपस्येति मणिपरीक्ष-
कदृष्टान्तेनोपदिशति—

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा

विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः ।

तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयोऽप्यर्थं विनापीश्वराः

कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका हि मणयो यैरर्घतः पातिताः॥१५॥

(अन्वयः) यस्य, प्रभोः, विषये, शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः, शिष्य-
प्रदेयागमाः, [अत एव] विख्याताः, कवयः, निर्धनाः, वसन्ति, तत्, वसुधा-
धिपस्य, जाड्यं, हि, कवयः, अर्थं, विना, अपि, ईश्वराः, (सन्ति) यैः, मणयः,
अर्घतः, पातिताः, (अतस्ते) कुपरीक्षकाः, कुत्स्याः, स्युः ॥ १५ ॥

(बालमनोरञ्जनी) यस्य=यन्नाम्नः, प्रभोः=राज्ञः, विषये=देशे,
शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः=व्याकरणाद्यलङ्कृतशब्दकमनीयवाचः, शिष्यप्रदे-
यागमाः=अन्तेवासिनां कृतेऽध्यापनयोग्यशास्त्राः, येषां शास्त्राणि छात्रेभ्यः,
प्रदेयानि सन्ति ते इत्यर्थः । (अत एव) विख्याताः=प्रसिद्धाः, कवयः=
पण्डिताः, निर्धनाः=धनरहिताः, वसन्ति=तिष्ठन्ति, तत्=निर्धनत्वेन पण्डितानां
वसनं, वसुधाधिपस्य=पृथिवीपतेः, जाड्यं=जडतादोषः, अस्तीति शेषः सुधि-
यामयं दोषो न । हि=यतः, कवयः=पण्डिताः, अर्थं=द्रव्यादि विना अपि,
ईश्वराः=महान्तः, (सन्ति) । तत्राऽयं दृष्टान्तः—यैः=परीक्षकैः, मणयः=
रत्नादयः, अर्घतः=मूल्यतः, पातिताः=बहुमूल्या अपि मणयोऽल्पमूल्याः कृताः,
(अतस्ते) कुपरीक्षकाः=ज्ञानशून्याः, कुत्स्याः=निन्द्याः, स्युः=भवेयुः, न तु
मणय इति शेषः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं
प्राग्दत्तम् ॥ १५ ॥

(समासः) शास्त्रे उपस्कृता ये शब्दास्तैः सुन्दरा गीर्षेणां ते । शिष्ये-
भ्यः प्रदेय आगमो येषां ते । वसुधाया अधिपो वसुधाधिपः ॥ १५ ॥

(कोषः) गीर्वाण्वाणी सरस्वती । विद्वान् विपश्चिद्दोषज्ञः सन् सुधीः
कोविदो बुधः । धीरो मनीषी ज्ञः प्राज्ञः संख्यावान् पण्डितः कविः ॥१५॥

(सरलार्थः) यस्य राज्ञो देशे वाक्पटवः शिष्यप्रदेयागमा, विद्वांसो निर्धनाः सन्ति, स दोषो राज्ञ एवास्ति, न विदुषाम् । यतो विद्वांसोऽर्थं विनाऽपि महान्तः सन्ति । यथा-परीक्षकैर्मणयो मूल्यतः पातिताः, अतस्ते कुपरीक्षका एव निन्द्याः भवन्ति, न मणयः । तथा च मणीनां वास्तविकं मूल्यमजानन्तः परीक्षका यथा निन्द्यास्तथैवोक्तविधकवीनां वास्तवं रूपमजानन्तो राजानोऽपि निन्द्याः सन्तीत्यर्थः । एतेन राज्ञा कवयः सम्माननीया इति सूच्यते ॥

(मनोरमा) जो शिष्यों के समाज में शास्त्रों के मनोहर वचन कहते हैं, ऐसे प्रसिद्ध पण्डित जिस राजा के राज्य में धनहीन होकर रहते हैं, यह उस राजा की ही जड़ता है, क्योंकि पण्डित लोग धन के बिना भी बड़े ही हैं । यदि किसी ने मणि का वास्तविक मूल्य न जानकर उसका तिरस्कार कर दिया तो यह उस परखने वाले का ही दोष है, न कि मणियों का ॥१५॥

सम्प्रति राज्ञा कवयः सम्माननीया एव, न तिरस्करणीया इति नीतिं विद्यादि-प्रशंसापूर्वकं तं प्रति श्लोकद्वयेन बोधयन्नाह—

हर्तुं याति न गोचरं किमपि शं पुष्पाति यत्सर्वदा

अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम् ।

कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनं

येषां तान्प्रति मानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते ॥१६॥

(अन्वयः) यत्, हर्तुः, गोचरं, न, याति, किमपि, शं, पुष्पाति, सर्वदा, अर्थिभ्यः, अनिशं, प्रतिपाद्यमानं, परां, वृद्धिं, प्राप्नोति, कल्पान्तेषु, अपि, निधनं, न, प्रयाति, विद्याख्यम्, अन्तर्धनं, येषां, तैः, सह, कः, स्पर्धते, (अतः) हे नृपाः ! तान्, प्रति, मानम्, उज्झत ॥१६॥

(वालमनोरञ्जनी) यत्=यद्धनं, हर्तुः=चोरादेः, गोचरं=नेत्र-विषयं, न=ना, याति=प्राप्नोति । (तथा) किमपि=किञ्चिदपि, शं=कल्याणं, पुष्पाति=पोषयति, सर्वदा=अहर्निशं, अर्थिभ्यः=आचकेभ्यः, अनिशं=निर-

न्तरं, प्रतिपाद्यमानं=दीयमानम्, (अपि) पराम्=उत्कृष्टां, वृद्धिम्=उन्नतिं, प्राप्नोति=याति, वर्द्धत इति यावत् । किञ्च, कल्पान्तेषु=युगान्तेषु, अपि, निधनं=नाशं, न=ना, प्रयाति=गच्छति, (एतादृशं) विद्याख्यं=विद्या-
नामकम्, अन्तर्धनं=गुप्तधनं, येषां=विदुषां, तैः=विद्वद्भिः, सह=साकं, कः=कः पुरुषः, स्पर्धते=स्पर्धां करोति, न कोऽपीत्यर्थः । (अतः) हे
वृषाः ! =हे राजानः !, तान्=पण्डितान्, प्रति, मानं=वयं धनिनो राजानः,
इमे पुनरतिदरिद्रास्तुच्छजना इति गर्वम्, उज्जमत=स्यजत । अत्र श्लोके
'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं प्राग् द्रष्टव्यम् ॥१६॥

(समासः) कल्पानामन्ताः कल्पान्तास्तेषु । विद्या आख्या यस्य तत् ।

(कोषः) अन्तो नाशो द्वयोर्मृत्युर्मरणं निधनोऽस्त्रियाम् ॥१६॥

(सरलार्थः) यद्धनं चोरणामक्षिविषयं न भवति, यत्सदा वृद्धिं
करोति, प्रतिदिनं मिश्रुकेभ्यो दीयमानमपि यद्वर्द्धते, युगान्तकालेष्वपि यन्न
क्षीयते, एवम्भूतं 'विद्या' नाम गुप्तं धनं येषामस्ति, तैः सार्धं कोऽपि स्पर्धां न
कर्तुं शक्नुयात्, अतो हे राजानः ! तान् विदुषः प्रति 'वयं धनिनः स्मस्ते
पुनर्दरिद्रास्तुच्छा' इति गर्वं मा कुरुतेत्यर्थः ॥१६॥

(मनोरमा) जो धन चोरों को दीख नहीं पड़ता और सदा कल्याण
को बढ़ाता है, तथा मिश्रुकों के देने पर भी जो बढ़ता ही जाता है, जिसका
कल्पान्त तक नाश नहीं होता, इस प्रकार का 'विद्या' नामक गुप्त धन जिसके
पास विद्यमान है, हे राजा ! ऐसे लोगों के साथ तुम अपने 'धनीपन' का
घमण्ड न दिखाओ ॥१६॥

अपि च—

अधिगतपरमार्थान्पण्डितान्मावमंस्था-

स्तृणमिव लघु लक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि ।

अभिनवमदलेखाश्यामगण्डस्थलानां

भवति न विसतन्तुर्वारणं वारणानाम् ॥१७॥

(अन्वयः) अधिगतपरमार्थान्, पण्डितान्, लघु, तृणम्, इव, मा, अवमंस्थाः, (यतः), लक्ष्मीः (अपि), तान्, न, एव, संरुणद्धि, अभिनवमदलेखाद्यामगण्डस्थलानां, वारणानां, विसतन्तुः, वारणं, न, भवति ॥ १७ ॥

(बालमनोरञ्जनी) अधिगतपरमार्थान्=प्राप्तसर्वोच्चपदान्, पण्डितान्=बुधान्, लघु=तुच्छं, तृणम्=अर्जुनम्, इव=यथा तृणं तथेत्यर्थः । मा, अवमंस्थाः=अपमानं मा कुरु । (यतः) लक्ष्मीः=हरिप्रिया, अत्र प्यन्तात् 'लक्ष'-धातोरीप्रत्ययः स्यात्तस्य "लक्षेर्मुट् च" इति मुडागमो णिलोपश्च भवति । अपि, तान्=पण्डितान्, न=ना, एव, संरुणद्धि=रोद्धुं शक्नोति । (यथा) अभिनवमदलेखाद्यामगण्डस्थलानां=नूतनमदजलपङ्क्तिद्यामकपोलप्रान्तभागानां, वारणानां=दन्तिनां, विसतन्तुः=कमलनालतन्तुः, वारणं=रोधकः, न, भवति=जायते । अत्र श्लोके 'मालिनी' नाम वृत्तम् । तत्तल्लक्षणं 'ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः' इति ॥ १७ ॥

(समासः) अधिगतः परमार्थो यैस्तेऽधिगतपरमार्थास्तान् । अभिनवो यो मदस्तस्य लेखा तथा इयामे गण्डस्थले येषां तेऽभिनवमदलेखा-इयामगण्डस्थलास्तेषाम् । विसस्य तन्तुर्विसतन्तुः ॥ १७ ॥

(क्रोषः) तृणमर्जुनम् । लक्ष्मीः पद्मालया पद्मा कमला श्रीहरिप्रिया । मदो दानम् । वीथ्यालिवावालः पङ्क्तिः श्रेणी लेखास्तु राजयः । दन्ती दन्तावल्लो हस्ती द्विरदोऽनेकपो द्विपः । मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी ॥ १७ ॥

(सरलार्थः) प्राप्तपरमार्थान् पण्डितास्तुच्छं तृणमिव न जानीहि, यतस्तान् लक्ष्मीरपि तथैव न रोद्धुं शक्नोति, यथा नूतनमदजलैरार्द्राकृतकपोलान् गजान् कमलविसतन्तुर्न रोद्धुं शक्नोतीति ॥ १७ ॥

(मनोरमा) जिन्हे सर्वोत्तम पद प्राप्त हैं ऐसे पण्डितों को तृण के समान न समझना क्योंकि तुम क्या, इन्हें लक्ष्मी भी उसी तरह नहीं रोक सकती जैसे मतवाले हाथी को मृणाल-तन्तु नहीं रोक सकता ॥ १७ ॥

आनुपङ्गिकगुणं बहवो निवर्तयन्ति, स्वभावसिद्धगुणं कोऽपि नेति हंस-
दृष्टान्तेन दर्शयति—

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव

हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।

न त्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां

वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समर्थः ॥ १८ ॥

(अन्वयः) कुपितः, विधाता, हंसस्य, अम्भोजिनीवननिवासविलासम्,
एव, नितरां, हन्ति तु, अस्य, दुग्धजलभेदविधौ, प्रसिद्धां, वैदग्ध्यकीर्तिम्,
अपहर्तुम्, असौ, न, समर्थः ॥ १८ ॥

(बालमनोरञ्जनी) कुपितः=रुष्टः, विधाता=ब्रह्मा, हंसस्य='हंस'-
नामकपक्षिविशेषस्य, अम्भोजिनीवननिवासविलासं=कमलिनीवननिवासाऽऽ-
नन्दम्, एव, नितरां=सुतरां, हन्ति=विनाशयति, तु=परन्तु, अस्य=हंसस्य,
दुग्धजलभेदविधौ=क्षीरजलपृथक्त्वविधाने, प्रसिद्धां=लोकविश्रुतां, वैदग्ध्यकीर्तिं=
स्वाभाविकचातुर्यशः, अपहर्तुं=दूरीकर्तुम्, असौ=ब्रह्मा (अपि), न=नो,
समर्थः=शक्तिमान् । अन्यस्य का वार्तित्यर्थः । अत्र 'वसन्ततिलका' नाम
वृत्तम् । अस्य लक्षणन्तु पूर्वमेवोक्तम् ॥ १८ ॥

(समासः) अम्भोजिनीनां वनमम्भोजिनीवनं तत्र निवासस्तेन यो
विलासस्तम् । दुग्धञ्च जलञ्च दुग्धजले तयोर्भेदो दुग्धजलभेदस्तस्य विधि-
स्तस्मिन् । वैदग्ध्यस्य कीर्तिर्वैदग्ध्यकीर्तिस्ताम् ॥ १८ ॥

(कोषः) 'वनं नपुंसकं तीरे निवासे' इति मेदिनी । हंसास्तु श्वेत-
गरुडश्चक्राङ्गा मानसौकसः ॥ १८ ॥

(सरलार्थः) कुपितो ब्रह्मा हंसस्य कमलिनीवनविहाराऽऽनन्दमेव
नाशयति, परन्तु तेन दुग्धजलयोः पृथक्करणे या चातुर्यकीर्तिरुपलब्धा,
तामपहर्तुमसौ ब्रह्माऽपि न शक्नोतीत्यर्थः ॥ १८ ॥

(मनोरमा) ब्रह्मा कुपित होकर 'हंस' के कमलिनी वन के विहार को ही नष्ट करते हैं परन्तु उसकी दूध पानी के अलग करने में स्वामाविक चतुरता को नहीं हटा सकते ॥१८॥

केयूरायलङ्कारेभ्यो वागलङ्कारो गरीयानित्यवश्यमेव स सम्पादनीय
इत्यभिप्रायेण वदति—

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वला
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नाऽलङ्कृता मूर्धजाः ।

वाण्येका समलङ्करोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते

क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥१९॥

(अन्वयः) केयूराः, पुरुषं, न, भूषयन्ति, चन्द्रोज्ज्वलाः, हाराः,
न, स्नानं, न, विलेपनं, न, कुसुमं, न, अलङ्कृताः, मूर्धजाः, न, (किन्तु),
एका, वाणी, पुरुषं, समलङ्करोति, या, संस्कृता, धार्यते, भूषणानि, क्षीयन्ते,
खलु, (अतः) वाग्भूषणम् (एव) सततं, भूषणम् ॥१९॥

(वालमनोरञ्जनी) केयूराः=अङ्गदादयो बाहुभूषणानि, पुरुषं=पुमांसं,
न=नो, भूषयन्ति=अलङ्कुर्वन्ति, चन्द्रोज्ज्वलाः=चन्द्रकान्तिसदृशाः, हाराः=
सौक्तिकस्रजः, न=न, भूषयन्तीति शेषः । स्नानं=जलादिना शरीरप्रक्षालनं, न=
न (भूषयति), विलेपनं=चन्दनादि, न=न (भूषयति), कुसुमं=पुष्पं, न
(भूषयति), किन्तु, एका=एकाकिनी, वाणी=वाग्, पुरुषं=पुमांसं, समल-
ङ्करोति=सम्यग्भूषयति । क्रीदशो सा वाणीत्यत आह-या=या, वाणी, संस्कृता=
व्याकरणादिसंस्कारसहिता, धार्यते=स्वीक्रियते, विद्वद्भिरिति शेषः । भूषणानि=
वागतिरिक्तानि केयूरादिभूषानि, क्षीयन्ते=उपशान्ति, खलु=किञ्च (अतः),
वाग्भूषणं=वागलङ्करणम् (एव), सततं=निरन्तरम्, अक्षयमिति यावत् ।
भूषणम्=अलङ्करणम् (अस्ति) नाऽन्यदिति भावः । अत्र श्लोके 'शार्दूल-
विक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥१९॥

(समासः) चन्द्र इवोज्ज्वलाश्चन्द्रोज्ज्वलाः ॥१९॥

(कोषः) केयूरमङ्गदं तुल्ये । हारो मुक्तावली । गात्रानुलेपनी वर्तिर्वर्णकं
स्याद्विलेपनम् । स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम् ॥१६॥

(सरलार्थः) पुरुषस्य केयूरादिबाहुभूषणधारणेन शोभा न भवति,
चन्द्रकान्तिसदृशानां हाराणां धारणेन न भवति, स्नानेन, लेपनेन, पुष्पे-
णाऽन्यभृङ्गारेण वा न भवति, किन्त्वेकया व्याकरणादिना संस्कृतया शुद्धवा-
ण्यैव शोभा भवति । अन्यानि भूषणानि क्षीयन्ते, किन्तु वाग्भूषणमेवाक्षयं
तस्य भूषणमस्तीत्यर्थः ॥१६॥

(मनोरमा) पुरुष की शोभा बाहु आदि में केयूर पहनने से नहीं
होती और न चन्द्रमा सरीखे उज्ज्वल हार पहनने से, स्नान, लेप, पुष्प
भृङ्गार से अथवा केश रचने से भी नहीं, किन्तु, केवल शुद्ध वाणी से ही
शोभा होती है । ये भूषण तो घिसकर नष्ट हो जाते हैं सिर्फ उसकी वाणी
ही सदा के लिए भूषण है, इसका कभी क्षय नहीं होता ॥१६॥

विद्यैव नरस्य रूपादिकमस्ति, विद्याविहीनो नरः पशुरेवास्ति । इ—
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनं

विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरुणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं

विद्या राजसुपूजिता न तु धनं विद्याविहीनः पशुः ॥२०॥

(अन्वयः) नरस्य, विद्या (एव) नाम, अधिकं, रूपं (अस्ति) प्रच्छ-
न्नगुप्तं, धनं, विद्या, भोगकरी, यशःसुखकरी, विद्या (एव) गुरुणां, गुरुः, विद्या
(एव), विदेशगमने, बन्धुजनः, परं, दैवतं, विद्या, (एव), विद्या (एव)
राजसुपूजिता, धनं, तु, न, (अतः) विद्याविहीनः, पशुः, (एवास्ति) ॥२०॥

(बालमनोरञ्जनी) नरस्य=पुरुषस्य, विद्या=वेदव्याकरणादिरूपा, (एव)
अत्र 'नाम' इति सम्भावनायाम् । अधिकं=श्रेष्ठं, रूपम्=आकृतिः (अस्ति) ।
(तथा) प्रच्छन्नगुप्तं=स्वान्तःस्थितत्वेनेतरानपहार्य-बाह्यसाधनापेक्षमननादिना
रक्षितं च, धनं=वसु, विद्या=वेदव्याकरणादिरूपा, भोगकरी=अन्नवस्त्रादिदायिनी,

यशःसुखकरी=कीर्त्यानन्ददायिनी, उभयत्रापि “कुञ्जो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु” इति सूत्रेण टो भवति । विद्या (एव), गुरुणाम्=उपदेष्टृणां, गृणाति हितमुपदिशतीति गुरुः=उपदेष्टा, विद्या (एव) विदेशगमने=परदेशगमने, बन्धुजनः=बन्धुवद्धितकारी, परम्=उत्कृष्टं, दैवतं=दैवं, विद्या एव : । विद्या (एव) राजसुपूजिता=वृषैः सम्यगर्चिता, धनं=द्रविणं, तु, न=न पूजितमित्यर्थः । (अतः) विद्याविहीनः=वेदव्याकरणादज्ञानशून्यः, विधेयाविधेयविमर्शपराङ्मुखः इति यावत् । पशुः=जन्तुः, एवास्तीति शेषः । तदुक्तम्—“विहिताविहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिविषयैर्विधिभिर्विहिष्कृतस्य । उदरभरणमात्रकेवलेच्छोः पुरुषपशोश्च पशोश्च को विशेषः ॥” इति तस्मात्पुरुषेणावश्यमेव विद्या सम्पादनीया । अत्रापि ‘शार्दूलविक्रीडितं’ नाम वृत्तम् । लक्षणान्तुक्तम् ॥२०॥

(समासः) प्रच्छन्नं गुप्तञ्चेति प्रच्छन्नगुप्तम् । बन्धुश्चासौ जनो बन्धुजनः । विदेशस्य गमनं विदेशगमनं तस्मिन् । राजभिः सुपूजिता राजसुपूजिता । विद्यया विहीनो विद्याविहीनः ॥ २० ॥

(कोषः) द्रव्यं वित्तं स्वापतेथं रिक्थमृक्थं धनं वसु । हिरण्यं द्रविणं गुम्नमर्थ-रै-विभवा अपि ॥ २० ॥

(सरलार्थः) पुरुषस्य विद्यैव श्रेष्ठं रूपमस्ति, विद्यैव तस्य गुप्तं धनं, विद्यैवाऽन्नवस्त्रादीन्युपहरति, सैव यशः, सुखञ्च ददाति, विद्यैवोपदेष्टृणामप्युदेष्टृणस्ति, सैव विदेशगमने बन्धुः, सैवोत्कृष्टं दैवमस्ति, विद्यैव राजभिः पूजिता भवति, धनं तु न पूजितं भवति, अतो विद्यारहितः पुरुषः पशुरेवास्तीत्यर्थः । (तस्माद्विद्याऽवश्यमेवाऽध्येतव्येति शम्) ॥ २० ॥

(मनोरमा) विद्या ही मनुष्य का सर्वोत्तम रूप और गुप्त धन है । विद्या ही खाने पीने को अन्न जल तथा पहनने को वस्त्र देती है । यश और सुख को देने वाली तथा गुरुओं को भी गुरु विद्या ही है । विद्या ही परदेशमें बन्धुजनों की भाँति सुख दुःख में सहायक होती है और यही सबसे प्रबल दैव है । राजाओं के द्वारा विद्या की ही पूजा होती है, धन की नहीं । इसी से

विद्या से रहित पुरुष पशु के समान है, तात्पर्य यह है—कि विद्या अवश्य पढ़नी चाहिए ॥ २० ॥

क्षमादिशुक्तस्येतरेर्वचनादिभिः किमित्याह—

क्षान्तिश्चेद्वचनेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्ति चेदेहिनां
ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्व्यौषधैः किं फलम् ।
किं सपैर्यदि दुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि
व्रीडा चेत्किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥२१॥

(अन्वयः) क्षान्तिः, चेत्, वचनेन, किं, देहिनां, क्रोधः, अस्ति, चेत्, अरिभिः, किं, ज्ञातिः, अस्ति, चेत्, अनलेन, किं, यदि, सुहृत्, चेत्, दिव्यौषधैः, फलं, किं, यदि, दुर्जनाः, (सन्ति तर्हि) सपैः किं, यदि, अनवद्या, विद्या, चेत्, धनैः, किमु, यदि, व्रीडा, चेत्, भूषणैः, किं, यदि, सुकविता, अस्ति, (तर्हि) राज्येन, किम् ॥ २१ ॥

(बालमनोरञ्जनी) क्षान्तिः=क्षमा, चेत्, वचनेन=मनोहारिभाषणेन, दुर्जनोक्तनिन्द्यभाषणेन वा किं=किमस्ति, क्षमयैव सर्वं जगत्प्रसीदतीति भावः । देहिनां=शरीरिणां, क्रोधः=कोपः, अस्ति=विद्यते, चेत्, अरिभिः=शत्रुभिः, किं=किमस्ति, उभयलोकप्रशंसादि सर्वं शत्रुकर्म कोप एव करिष्यतीत्यर्थः । ज्ञातिः=स्वजातिः, सन्निधाविति शेषः । अस्ति=विद्यते, चेत्, अनलेन=वहिना, किं=किं प्रयोजनम्, अग्निघृतं तापादिकं ज्ञातिरेव करिष्यतीत्यर्थः । यदि, सुहृत्=सखा, चेत्, दिव्यौषधैः=उत्तमौषधैः, फलं=साधनीयं, किं=किमस्ति, अथवा—सुहृत्=सन्तुष्टान्तःकरणम्, यदौषधैः शरीरहितं, भवति, तत्सुहृदा भवति । यदि, दुर्जनाः=बलाः, (सन्ति तर्हि) सपैः=भुजङ्गैः, किं=किं प्रयोजनम् । दंशनमन्तराऽपि दुर्जनैः प्राणघातादिकरणे सम्भवति सति सपैः, किं प्रयोजनमित्यर्थः । यदि अनवद्या=अनिन्द्या, विद्या=वेदव्याकरणादिज्ञानं, चेत्, धनैः=द्रव्यैः, किमु, धने यत्सुखं भवति, तद्विद्ययैव भवतीत्यर्थः । यदि, व्रीडा=लज्जा, चेत्, (तर्हि) भूषणैः=वाद्यैरलङ्कारैः, किं=किं प्रयोजनं, लज्जयैवालङ्क-

४ रणकार्यं भवतीत्यर्थः । यदि सुकविता=कीर्त्यादिवर्णनचतुरा पद्यादिरचना, अस्ति=विद्यते, (चेत्तर्हि) राज्येन=राजकीयसुखेन, किं=किं प्रयोजनं, सुकवितयैव राज्यादिसुखावाप्तिर्भवतीत्यर्थः । अत्रापि पूर्वोक्तमेव वृत्तम् ॥२१॥

(समासः) सुष्ठु हृदयं यस्य सः सुहृत् । (हृदयपक्षे) सुष्ठु हृत् सुहृत् । दिव्यानि च तानि औषधानि दिव्यौषधानि तैः । न अवद्या अनवद्या । सुष्ठु कविता सुकविता ॥२१॥

(कोषः) क्षितिक्षान्त्योः क्षमा । कोपक्रोधामर्षप्रतिधारुद्विधौ द्विधौ । अथ मित्रं सखा सुहृत् । (स्वान्तं हन्मानसं मनः) मन्दाक्षं हीनपा व्रीडा लज्जा साऽपत्रपाऽन्यतः ॥२१॥

(सरलार्थः) यदि क्षमाऽस्ति तर्हि वचनस्यावश्यकता नास्ति, क्रोधोऽस्ति चेच्छत्रुभिः, किं स्यात् ? यदि स्वजातिः कश्चित्सन्निधौ वर्तते तर्हि बह्वैः काऽऽवश्यकता, यदि कश्चन सखाऽस्ति तर्ह्युत्तमौषधैः किं प्रयोजनं, यदि खलाः, जनाः सान्तं सपैरपि न किञ्चित्प्रयोजनम्, यद्यनिन्द्या विद्या पाद्वैऽस्ति तर्हि धनैरपि किं, यदि लज्जास्ति तर्हि बाह्यभूषणैः किं, यदि पद्यादिरचना शक्तिरस्ति राज्येन किं, किमपि प्रयोजनं नास्तीत्यर्थः ॥२१॥

(मनोरमा) जिसके पास सहन-शक्ति है, उसको मीठे २ वचनों की क्या ज़रूरत है । जिसको क्रोध है उसको शत्रु का क्या काम है । यदि पास में कोई स्वजातीय (दायाद) हो तो आग की कोई ज़रूरत नहीं है, यदि पास में मित्र हैं तो उत्तम २ औषधियों का काम नहीं । यदि निकट में दुर्जन लोग हैं तो सपों की ज़रूरत नहीं । यदि प्रशंसनीय विद्या हो तो धन से ही क्या काम । यदि लाज है, तो बाहरी गहनों की ज़रूरत नहीं, और यदि सुन्दर कवित्व-शक्ति मौजूद है, तो राज्य क्या चीज है ॥२१॥

समुच्चितक्रियां कुर्वन्ति जने न्यायमार्गस्थितिर्भवतीत्युच्यते—

दाक्षिण्यं स्वजने दद्या परजने शास्त्रं सदा दुर्जने

प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।

शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता

ये चैवं पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ॥२२॥

(अन्वयः) स्वजने, दाक्षिण्यं, परजने, दया, दुर्जने, सदा, शास्त्रं, साधुजने, प्रीतिः, नृपजने, नयः, विद्वज्जनेषु, आर्जवम्, शत्रुजने, शौर्यं, गुरुजने, क्षमा, नारीजने, धूर्तता, एवं, ये, च, पुरुषाः, कलासु, कुशलाः, तेषु, एव, लोकस्थितिः ॥२२॥

(वालमनोरञ्जनी) स्वजने=स्वोये पुत्रकलत्रादौ, दाक्षिण्यम्=श्रीदार्यं, सारल्यमिति यावत् । परजने स्वकीयपुत्रकलत्रातिरिक्ते जने, दया=कृपा, दुर्जने=खलजने, सदा=अहर्निशं, शास्त्रं=वचकता, साधुजने=परोपकारिणि जने, प्रीतिः=अनुरागः, नृपजने=राज्ञि, नयः=नीतिः, विद्वज्जनेषु=पण्डितजनेषु, आर्जवं=कौटिल्यं, शत्रुजने=अरिजने, शौर्यं=शूरतां, गुरुजने=महाजने, क्षमा=तत्कृतोपद्रवसहनं, नारीजने=स्त्रीजने, धूर्तता=वचकता, एवम्=एवं प्रकारेण, ये, च, पुरुषाः=नराः, कलासु=यथायथव्यवहरणक्रियासु, कुशलः=दक्षाः, निपुणा इत्यर्थः । तेषु कलाकुशलेषु पुरुषेषु, एव, लोकस्थितिः=लोकन्यायमार्गसंस्था, तदनुरोधेनैव सव लाका विद्यते इत्यर्थः । अत्रापि तदेव वृत्तम् । तल्लक्षणापि तदेवेति शम् ॥२२॥

(समाप्तः) स्वत्य जनः स्वजनस्तस्मिन् । परश्चासौ जनः परजनस्तस्मिन् । दुष्टश्चासौ जनस्तस्मिन् । साधुश्चासौ जनस्तस्मिन् । नृपश्चासौ जनो नृपजनस्तस्मिन् । विद्वांसश्च ते जनाश्च विद्वज्जनास्तेषु । एवमग्रेऽपि शत्रुजनादौ समाप्ता बोध्यः ॥२२॥

(कोपः) दक्षिणे सरत्तोदारौ । संस्था तु मर्यादाधारणा स्थितिः ॥२२॥

(सरत्तार्थः) आत्मीयजनेपूदारता, परजनेषु दया, दुर्जने वचकता, साधुजने प्रीतिः, राजनि नीतिः, पण्डितेषु कौटिल्यं, शत्रुषु शूरता, गुरौ सहनं, नारीजने धूर्तता, एवं रीत्या, ये पुरुषाः कलासु कुशलाः सन्ति, तदनुरोधेनैव सर्वे जना वर्तन्ते इत्यर्थः ॥२२॥

४ (मनोरमा) जो अपने लोगों पर उदारता, दूसरों पर दया, दुर्जनों पर शठता का व्यवहार करते और साधु से प्रीति, राजा से नीति, पण्डितों से कुटिलता, शत्रुओं से शूरता और गुरु से सहनशीलता, स्त्रियों से धूर्तता का वर्ताव करना जानते हैं, वे ही लोग संसार की स्थिति को काबू में रख सकते हैं अर्थात् ऐसे ही लोगों के साथ दुनिया के हर एक शख्स की सहाजुभूति रहती है ॥ २२ ॥

सत्संगतिर्जाड्यापहरणादिकं सर्वं करोतीत्युच्यते—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं

मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिं

सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ॥ २३ ॥

(अन्वयः) सत्संगतिः, धियः, जाड्यं, हरति, वाचि, सत्यं, सिञ्चति, मानोन्नतिं, दिशति, पापम्, अपाकरोति, चेतः, प्रसादयति, दिक्षु, कीर्तिं, तनोति, (एवं सत्सङ्गतिः) पुंसां, किं, किं, न, करोति ॥ २३ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सत्सङ्गतिः=साधुजनसमागमः, धियः=बुद्धेः, जाड्यं=मन्दतां, हरति=नाशयति । वाचि=गिरि, सत्यम्=ऋतं, सिञ्चति=तथ्यमेव वक्तुमुपदिशतीत्यर्थः । यया सत्सङ्गत्या लोकाः सत्यमेव वदन्तीति यावत् । मानोन्नतिं=सम्मानोन्नतां, दिशति=ददाति, पापं=पाप्म, अपाकरोति=दूरीकरोति । चेतः=चित्तं, प्रसादयति=प्रसन्नतां नयति, दिक्षु=दिशासु, कीर्तिं=यशः, तनोति=विस्तारयति । (एवंविधा सत्सङ्गतिः) पुंसां=पुरुषाणां, किं किं=किं किं कार्यं, न=नो, करोति=साधयति, इति=एतत्, वद=कथय । सर्वाप्यपि करोतीत्यर्थः । अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् । तत्तल्लक्षणं द्वितीयश्लोकटीकायां द्रष्टव्यम् ॥ २३ ॥

(समासः) सतां सङ्गतिः सत्संगतिः । मानोन्नतिर्मानोन्नतिस्ताम् ॥ २३ ॥

(कोषः) ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वावाणी सरस्वतो । बुद्धिर्मनीषा

धोषणा धीः प्रज्ञा शोमुषी मतिः । अस्त्री पङ्कं पुमान्पाप्मा पापं
किल्बिषकल्मषम् ॥२३॥

(सरलार्थः) सतां संगतिर्बुद्धेर्मान्यं नाशयति, तथा च सर्वे सत्यमेव
वदन्ति, सा च मानोन्नतिं ददाति, पापञ्च हरति, सत्सङ्गतिं प्राप्य चित्तं मोदते,
प्रतिदिशं सा कीर्तिं तनोति, एवंविधा सत्सङ्गतिः पुरुषाणां सर्वानप्यर्था-
न्प्रसाधयतीत्यर्थः ॥२३॥

(मनोरमा) बुद्धि की जड़ता हरती, सत्य कहलवाती, मान बढ़ाती और
पाप को दूर करती है । चित्त को प्रसन्न करती और दिशाओं में यश फैलाती
है । भला कहो, इस प्रकारकी सत्सङ्गति मनुष्यों का क्या नहीं करती ॥ २३ ॥

सम्प्रति कवीश्वराणां सर्वोत्कृष्टत्वं दर्शयति—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।

नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥ २४ ॥

(अन्वयः) रससिद्धाः, ते, कवीश्वराः, सुकृतिनः (सन्तः) जयन्ति,
येषां, यशःकाये, जरामरणजं, भयं, न, अस्ति ॥ २४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) रससिद्धाः=शृङ्गारादिषु पक्षे पारदादिषु सिद्धिमन्तः,
ते वक्ष्यमाणविषयाः, कवीश्वराः=कवीन्द्राः, सुकृतिनः=धन्याः (सन्तः) जयन्ति=
सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते, येषां=कवीश्वराणां, यशःकाये=यशश्शरीरे, जरामरणजं=
वार्द्धकमृत्युजं, भयं=भीतिः, न=ना, अस्ति=विद्यते । यथा पुटपाकादि-
सिद्धौषधसेवनेन जरामरणभयरहितः सन् वैद्यो न नश्यति, एवं कवीनां शृङ्गा-
रादिरसपूर्णानाविधकाव्यवचनजन्यं यशः कल्पान्तरेऽपि न प्रणश्यतीति भावः
अत्र 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ २४ ॥

(समासः) रसेषु सिद्धा रससिद्धाः । कवीनामीश्वराः कवीश्वराः ।
यशोरूपः कायो यशःकायस्तस्मिन् । जरा च मरणञ्च जरामरणे, ताभ्यां
जातम् ॥ २४ ॥

(कोषः) सुकृती पुण्यवान्धन्यः । संख्यावान्पण्डितः कविः ॥ २४ ॥

(सरलार्थः) रसेषु सिद्धिं प्रापितास्ते कविशिरोमणय एव धन्याः सन्तः सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते, येषां यशोरूपे शरीरे वार्द्धकजन्यं मृत्युजन्यं च भयं नास्तीत्यर्थः ॥ २४ ॥

(मनोरमा) वे ही रससिद्ध कवीश्वर धन्य कहलाते हुए सबसे श्रेष्ठ कहे जाते हैं, जिनके यशरूपी शरीरमें बुढ़ापा और मरणकृत भय नहीं होता ॥ २४ ॥

एतेन 'पुत्रादयः सच्चरितादियुक्ता भवन्ती'-त्यत्र भगवत्कृपाकारणतां दर्शयति—

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः

स्निग्धं मित्रमवञ्चकः परिजनो निक्लेशलेशं मनः ।

आकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदातं मुखं

तुष्टे पिष्टपहारिणीष्टदहरौ सम्प्राप्यते देहिना ॥ २५ ॥

(अन्वयः सूनुः, सच्चरितः, प्रियतमा, सती, स्वामी, प्रसादोन्मुखः, मित्रं, स्निग्धं, परिजनः, अवञ्चकः, मनः, निक्लेशलेशम्, आकारः, रुचिरः, विभवः, स्थिरः, मुखं, विद्यावदातं, पिष्टपहारिणि, इष्टदहरौ, तुष्टे (सति) देहिना, सम्प्राप्यते ॥ २५ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सूनुः=पुत्रः, सच्चरितः=सदाचरणशीलः, प्रियतमा=पत्नी, सती=पतिव्रता, स्वामी=रक्षकः, प्रसादोन्मुखः=प्रसन्नतोन्मुखः, मित्रं=सखा, स्निग्धं=वात्सल्यादिगुणयुक्तं, परिजनः=परिवारः, अवञ्चकः=वञ्चकतारहितः, मनः=अन्तःकरणं, निक्लेशलेशं=रागद्वेषादिजन्यक्लेशलवरहितम्, आकारः=मूर्तिः, रुचिरः=सुन्दरः, विभवः=ऐश्वर्यं, स्थिरः=चिरस्थायी, मुखम्=आस्थं, विद्यावदातं=विद्यया शुद्धं, एतत्पूर्वोक्तं सर्वं पिष्टपं हरति तच्छीलस्तस्मिन् पिष्टपहारिणि=जगदुद्धरणकर्तरि, इष्टदहरौ=इष्टदातरि भगवति, तुष्टे=प्रसन्ने (सति) देहिना=शरीरिणा, सम्प्राप्यते=सम्पक् लभ्यते । अन्यथा नेति भावः । अत्र 'शाब्दलविक्रीडित' नाम वृत्तम् । लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ५ ॥

(समासः) सत् चरितं यस्य सः । प्रसादे ऊर्ध्वं मुखं यस्य सः ।
निर्गतः क्लेशस्य लेशो यस्मात्सः । विद्ययाऽवदातम् । इष्टदश्चासौ हरिरिष्ट-
दहरिस्तस्मिन् ॥ २५ ॥

(कोषः) सती साध्वी पतिव्रता । अवदातः सिते पीते शुद्धे । 'जगत्स्या-
त्पिष्टपे क्लीवं वायौ ना जङ्गमे त्रिषु' इति मेदिनी ॥ २५ ॥

(सरलार्थः) सच्चरितः पुत्रः, पतिव्रता स्त्री, अनुकूलः स्वामी,
वात्सल्यादिगुणयुक्तः सखा, धूर्ततारहितः कुटुम्बः, रागद्वेषादिरहितं मनः,
सुन्दराऽऽकृतिः, चिरस्थायी विभवः, विद्यया शुद्धं मुखं, एतत्सर्वमपि जगद्-
द्वारकर्तार भगवति नारायणे प्रसन्ने सति शरीरी प्राप्नोति, अन्यथा किञ्चि-
दपि नेत्यर्थः ॥ २५ ॥

(मनोरमा) सदाचारी पुत्र, पतिव्रता स्त्री, प्रसन्न रहने वाला स्वामी,
प्रेमी मित्र, धूर्तता रहित परिवार, क्लेश का जिसमें लेश भी न हो ऐसा
मन, सुन्दर शरीर, चिरकाल तक रहने वाला ऐश्वर्य, और विद्या से पवित्र
हुआ मुख, ये सब मनुष्यों को तभी मिलते हैं, जब भगवान् नारायण
प्रसन्न रहते हैं ॥ २५ ॥

प्राणिहिंसाद्यभाव एव कल्याणमार्ग इत्युच्यते—

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्यवाक्यं
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथामूकभावः परेषाम् ।

तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषु च विनयः सर्वभूतानुकम्पा

सामान्यः सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः ॥ २६ ॥

(अन्वयः) प्राणाघातात्, निवृत्तिः, परधनहरणे, संयमः, सत्यवाक्यं,
काले, शक्त्या, प्रदानं, परेषां, युवतिजनकथामूकभावः, तृष्णास्रोतोविभङ्गः,
गुरुषु, विनयः, च, सर्वभूतानुकम्पा, एषः, सर्वशास्त्रेषु, अनुपहतविधिः, सामान्यः,
श्रेयसां, पन्थाः ॥ २६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) प्राणाघातात्=स्वस्य परस्य वा प्राणहननात्,

निवृत्तिः=निवर्तनं, परधनहरणे=ग्रन्थद्रव्यापहरणे, संयमः=वित्तवृत्तिनिग्रहः, प्रवृत्त्यभाव इत्यर्थः । सत्यवाक्यं=यथार्थभाषणं, काले=पुण्यकाले, पुण्यपर्वणोति यावत् । शक्त्या=यथाशक्त्या, प्रदानं=ब्राह्मणादिभ्यो दानं, परेषाम्=अन्येषां, युवतिजनकथामूकभावः=तरुणीजनकथोद्घाटनविधौ तूष्णीभावः, तूष्णास्रोतो-विभङ्गः=आशाप्रवाहप्रणाशः, च=तथा, गुरुषु=स्वतःश्रेष्ठेषु, महाजनेष्विति यावत् । विनयः=नम्रता, च=तथा, सर्वभूतानुकम्पा=सर्वेष्वपि प्राणिषु दया, एषः=असौ, सर्वशास्त्रेषु=निखिलशास्त्रेषु, अनुपहतविधिः=अकुपितविधानः, सामान्यः=सर्वलोकसाधारणः, श्रेयसां=कल्याणानां, पन्थाः=मार्गः, अन्यो नेत्यर्थः । अत्र श्लोके 'स्रग्धरा' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं-यथा-'मनभनैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इति ॥२६॥

(समासः) प्राणस्याऽऽघातः प्राणाघातस्तस्मात् । परेषां धनं परधनं तस्य हरणं तस्मिन् । सत्यं च तद्वाक्यं, सत्यवाक्यम् । युवतिजनस्य कथा युवतिजनकथास्तासु मूकभावः । तूष्णायाः स्रोतस्तूष्णास्रोतस्तस्य विभङ्ग-स्तूष्णास्रोतोविभङ्गः । सर्वाणि च तानि भूतानि सर्वभूतानि तेषु अनुकम्पा-सर्वभूतानुकम्पा । सर्वाणि च तानि शास्त्राणि तेषु । अनुपहतो विधिर्यस्य स इति ॥

(कोषः) तूष्णा स्पृहापिपासे द्वे । स्रोतोऽभ्युसरणं स्वतः । स्रोत इन्द्रिये निम्नगारये, इति च । अयनं वर्त्म मार्गाध्वपन्थानः पदवी सृतिः ॥२६॥

(सरत्तार्थः) आत्मनः परस्य वा हननं न कुर्यात्, परस्य धनं न हरणीयं, यथायोग्यं शुभेऽवसरे ब्राह्मणादिभ्यो दानं दद्यात्, यत्र परकीयस्त्री-वार्ता भवेत्, तत्र किञ्चिदपि न वक्तव्यं, स्वतः श्रेष्ठेषु नम्रता कर्तव्या, सर्वभू-तेषु च कृपा कर्तव्या, इत्येष एव सर्वशास्त्रेषु विहितः सर्वलोकसाधारणः कल्याणानां मार्गो नाऽन्य इत्यर्थः ॥२६॥

(मनोरमा) अपने या दूसरे किसी पर भी आघात नहीं करना चाहिए । दूसरे का धन नहीं चुराना चाहिए । सत्य बोलना, शुभ अवसर पर यथा योग्य दान देना, और जहाँ पराई औरत की बात चलती हो वहाँ त्रिलो-

कुल चुप रहना चाहिए । दान, मान से सबकी तृष्णा शान्त करनी चाहिए । अपने से श्रेष्ठ लोगों में नम्रता दिखानी चाहिए । सब प्राणियों पर दया करनी चाहिए । सब शास्त्रों में जिसका विधान है, ऐसा सब के कल्याण का एकमात्र यही मार्ग है ॥२६॥

नीचमध्यमोत्तमानां क्रियारम्भे वैजिन्यमाह—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः

प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।

विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः

*प्रारब्धमुत्तमजना न परित्यजन्ति ॥२७॥

(अन्वयः) नीचैः, विघ्नभयेन, (कर्म), न, प्रारभ्यते, खलु, मध्याः, प्रारभ्य, विघ्नविहताः (सन्तः), विरमन्ति; उत्तमजनाः, विघ्नैः, पुनः पुनः, प्रतिहन्यमानाः (अपि), प्रारब्धं, न, परित्यजन्ति ॥२७॥

(बालमनोरञ्जनी) नीचैः=अधमैः पुरुषैः, विघ्नभयेन=अन्तराय-भीत्या, (कर्म) न=ना, प्रारभ्यते=कर्तुं प्रयत्यते, खलु=निश्चयेनेत्यर्थः । मध्याः=मध्यमपुरुषाः, प्रारभ्य=प्रारम्भं कृत्वा, विघ्नविहताः=अन्तरायचालिताः, (सन्तः), विरमन्ति=विरामं प्राप्नुवन्ति, ततस्तत्कर्म त्यजन्तीत्यर्थः । उत्तमजनाः=उत्तमपुरुषाः, विघ्नैः=अन्तरायैः, पुनः पुनः=वारम्बारं, प्रतिहन्यमानाः=चाल्यमानाः, (अपि) प्रारब्धं=स्वारब्धं, कार्यं, न=नो, परित्यजन्ति=त्यागं कुर्वन्ति । यथासमयमुपस्थितेऽपि विघ्ने ततो निवृत्त्युपायं कुर्वन्तीति भावः । अत्र 'वसन्त-तिलका' नाम वृत्तम् ॥२७॥

(समासः) विघ्नाद्भयं विघ्नभयं तेन । विघ्नेन विहता विघ्नविहताः । उत्तमाश्च ते जना उत्तमजनाः ॥२७॥

(कोषः) विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः ॥२७॥

* 'प्रारभ्य तुत्तमजनाः' इत्यपि पाठः ।

(सरलार्थः) नीचजना 'अस्मिन् विघ्नोऽस्तीति' भौत्या कार्यं नाऽऽरम्भन्ते, मध्यमजनाः कार्यारम्भं कृत्वाऽपि विघ्नानवलोक्य विरमन्ति, उत्तमजनास्तु यत्कार्यमारम्भन्ते, तस्मिन्नाशये कार्यं विघ्नानवलोक्यापि तत्कार्यकरणाच्च विरमन्तीत्यर्थः ॥ २७ ॥

(मनोरमा) 'हमारे इस कार्य में विघ्न होगा' ऐसा सोच कर अधम लोग कार्य में हाथ ही नहीं लगाते । जो मध्यम जन हैं वे कार्यारम्भ तो कर देते हैं पर जब उसमें किसी प्रकार विघ्न आ पड़ता है तो उसे छोड़ बैठते हैं । परन्तु उत्तमजन जिस कार्य का आरम्भ करते हैं उसमें बारम्बार अनेक विघ्नों के आने पर भी उस आरम्भ किये कार्य को बिना किये नहीं रहते अर्थात् जिसका आरम्भ करते हैं, उसका अन्त भी कर ही देते हैं ॥ २७ ॥

साधुवदेव वक्तव्यं नासाधुवदिति बोधयितुं साध्वाचारं प्रशंसति—

असन्तो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः

प्रिया न्याय्या वृत्तिर्मलिनमसुभङ्गेऽप्यसुकरम् ।

विपथुच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महतां

सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥ २८ ॥

(अन्वयः) असन्तः, अभ्यर्थ्याः, न, कृशधनः, सुहृद्, अपि, न, याच्यः, प्रिया, न्याय्या, वृत्तिः, मलिनम्, असुभङ्गे, अपि, असुकरं, विपदि, उच्चैः, स्थेयं, च, महतां, पदम्, अनुविधेयं, इदं, विषमम्, असिधाराव्रतं, सतां, केन, उद्दिष्टम् ॥ २८ ॥

(वालमनोरञ्जनी) असन्तः=दुर्जनाः, अभ्यर्थ्याः=याच्याः, न=न, सन्ति, कृशधनः=क्षीणधनः, सुहृद्=सखा, अपि, न=नो, याच्यः=अभ्यर्थनीयः, प्रिया=हिता, हितकारिणीति यावत् । न्यायादनपेता न्याय्या=न्याय्ययुक्ता, वृत्तिः=जीविका, मलिनं=निन्द्यं (कर्म), असुभङ्गे=प्राणनाशे, अपि, असुकरं=दुष्करं, प्राणनाशसमयेऽपि निन्द्यं कर्म न करणीयमित्यर्थः । विपदि=विपत्काले, उच्चैः=उन्नतं, स्थेयं=स्थातव्यं, कस्यापि सम्मुखे स्वविपन्न प्रकटनीयेत्यर्थः ।

च=तथा, महताम्=आदरणीयानां, पदं=स्थानम्, अनुविधेयम्=अनुसरणीयम्, इदं=पूर्वोक्तं, विषमम्=अतिकठिनम्, असिधाराव्रतं=खड्गधाराऽऽचरणं, सतां=सज्जनानां, केन=केन पुरुषेण, उद्दिष्टम्=उपदिष्टं, न केनाऽप्युपदिष्टम्, अपि तु सतां स्वभावसिद्धमित्यर्थः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं तु अष्टमश्लोकटीकायामुल्लिखितम् ॥ २८ ॥

(समासः) न सन्तोऽसन्तः । सुष्ठु हृदयं यस्य सः । कृशं धनं यस्य सः । असूनां भङ्गोऽसुभङ्गस्तस्मिन्नसुभङ्गे । न सुकरमसुकरम् । असेधाराऽसिधारा सेव व्रतमसिधाराव्रतम् ॥ २८ ॥

(कोषः) सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दध्, कृशं तनु । पुंसि भूम्यसवः प्राणाः । विपत्त्यां विपदापदौ ॥ २८ ॥

(सरलार्थः) दुर्जनाः कदापि न याचनीयाः, अल्पधनवान् सखाऽपि न प्रार्थनीयः, न्यायरहिता वृत्तिर्न कर्तव्या, प्राणनाशसमयेऽपि निन्यं कर्म न कर्तव्यं, विपत्काले समायातेऽपि धैर्यमवलम्ब्य स्थातव्यं, कचिदपि स्वविपन्न कथनीया, महतां पन्था आश्रयणीयः, इतोदं पूर्वोक्तं सज्जनानामतिकठिनमसिधारेव तीक्ष्णं व्रतं केनोपदिष्टमित्यर्थः ॥ २८ ॥

(मनोरमा) असाधु लोगों से कुछ भी न माँगना, धनहीन मित्र से भी कुछ न माँगना, न्याययुक्त जीविका करना, प्राण जाय तो जाय पर नीच काम नहीं करना, विपत्ति पड़ने पर भी ऊँचे रहना, बड़े लोगों के मार्ग का अवलम्बन करना, यह उपरोक्त महज्जनों को तीक्ष्ण तलवार की धार पर चलना किसने सिखलाया ! अर्थात् किसी ने नहीं सिखलाया, बल्कि यह उनका स्वभावसिद्ध है ॥ २८ ॥

अतिदुःखमापन्नेऽपि मानी महाजनः स्वमहत्त्वविरुद्धं निन्यं कर्म न करोतीतिः सिंहाव्योक्त्याऽऽह—

श्रुत्क्षामोऽपि जराकृशोऽपि शिथिलप्राणोऽपि कष्टां दशा-

मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि !

मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलप्रासैकवद्वस्पृहः-

किं जीर्णं तृणमत्ति मानमहतामग्रेसरः केसरी ॥२९॥

(अन्वयः) क्षुत्क्षामः, अपि, जराकृशः, अपि, शिथिलप्राणः, अपि, कष्टां, दशाम्, आपन्नः, अपि, विपन्नदीधितिः, अपि, प्राणेषु, नश्यत्सु, अपि, मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलप्रासैकवद्वस्पृहः, मानमहताम्, अग्रेसरः, केसरी, जीर्णं, तृणम्, अत्ति, किम् ॥२९॥

(वालमनोरञ्जनी) क्षुत्क्षामः=क्षुधादुर्बलः, अपि, जराकृशः=वृद्धावस्थया तनुः, शिथिलप्राणः=शैथिल्ययुक्ता शक्तिरित्यर्थः । अपि, कष्टां=दुःखदां, दशाम्=अवस्थाम्, आपन्नः=प्राप्तः, अपि, विपन्नदीधितिः=नष्टदीप्तिः, अपि, प्राणेषु=असुषु, नश्यत्सु=नाशोन्मुखेषु (सत्सु), अपि, मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलप्रासैकवद्वस्पृहः=मदोन्मत्तगजेन्द्रविदारितगण्डस्थलमांसपिण्डभक्षणवद्वैकवाञ्छः, मानमहतां=मानोज्ञातिमताम्, अग्रेसरः=अग्रगामी, केसरी=सिंहः, जीर्णं=विरसं, तृणं=घासम्, अत्ति=खादति, किम् ! अपि तु नेत्यर्थः । यथा मानी सिंहः प्राणान्तसमयेऽपि मांसं विहाय जीर्णतृणभक्षणरूपं निन्द्यं कर्म न करोति तथैव मानिभिरपि स्वप्राणनाशसमयेऽपि निन्द्यं कर्म न सम्पादनीयमिति भावः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥२९॥

(समासः) *क्षुधा क्षामः क्षुत्क्षामः । जरया कृशो जराकृशः । शिथिलः प्राणो यस्य सः । विपन्ना दीधितिर्यस्य सः । इमानामिन्द्रा इमेन्द्राः, मत्ताश्च ते इमेन्द्रा मतोमेन्द्रास्तेषां विभिन्ना ये कुम्भास्तत्सम्बन्धो यः कवलस्तस्य प्रासस्तस्मिन्नेवैका वद्धा स्पृहा येन सः । माने महान्तस्तेषाम् ॥२९॥

(कोषः) शक्तिः पराक्रमः प्राणः । मतङ्गजो गजो नागः कुञ्जरो वारणः करी । इभः स्तम्भेरमः पद्मी । प्रासस्तु कवलः पुमान् ॥२९॥

(सरलार्थः) क्षुधया दुर्बलोऽपि, वृद्धावस्थया कृशोऽपि, शिथिल-
प्राणोऽपि, कष्टप्रदां दशां गतोऽपि, नष्टदीप्तिरपि, प्राणेषु नश्यत्स्वपि मानी
सिंहः स्वमक्षणीयं मदोन्मत्तगजेन्द्राणां मांसपिण्डं परित्यज्य जीर्णतृणभक्षणं न
कर्तुमभिलषतीत्यर्थः ॥२६॥

(मनोरमा) भूख से व्याकुल, वृद्धावस्था से कृश, शिथिल शक्तिवला,
कष्ट में पड़ा हुआ, तेज रहित, मरणासन्न होता हुआ भी मानियों में अगुआ
सिंह, मतवाले हाथी का मस्तक फाड़ कर निकाले हुए मांस को छोड़, सूखी
हुई घास नहीं खाना चाहता ॥२६॥

मानी पूर्वोक्तरीत्याऽऽचरन्नपि स्वसत्त्वानुकूलं फलं प्राप्नोतीति श्वसिंहवृष्टान्तेन वदति—

स्वल्पं स्नायुवसावशेषमलिनं निर्मांसमप्यस्थि गोः

श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशान्तये ।

सिंहो जम्बुकमङ्गमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विपं

सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपं फलम् ॥३०॥

(अन्वयः) स्नायुवसावशेषमलिनं, निर्मांसम्, अपि, स्वल्पं, गोः,
अस्थि, लब्ध्वा, श्वा, सन्तोषम्, एति, तु, तत्, तस्य, क्षुधाशान्तये, न, सिंहः,
अङ्गम्, अपि, जम्बुकं, त्यक्त्वा, द्विपं, निहन्ति, कृच्छ्रगतः, अपि, सर्वः, जनः,
सत्त्वानुरूपं, फलं, वाञ्छति ॥३०॥

(बालमनोरञ्जनी) स्नायुवसावशेषमलिनम्=अङ्गप्रत्यङ्गसन्धिबन्धन-
शिराविशेष-भेदावशिष्टमलिनं, निर्मांसं=मांसरहितम्, अपि, स्वल्पम्=ईषत्,
गोः=वृषभस्य, अस्थि=कीकसं, लब्ध्वा=उपलभ्य, श्वा=कुक्कुरः, (यद्यपि),
सन्तोषं=परितोषम्, एति=प्राप्नोति, तु=परन्तु, तद्=अस्थि, तस्य=शुनः,
क्षुधाशान्तये=क्षुधाया निवृत्त्यर्थं, न=न भवतीति शेषः । सिंहः=मृगेन्द्रः, अङ्गम्=
उत्सङ्गम्, आगतं=प्राप्तम्, अपि, जम्बुकं=शृगालं, त्यक्त्वा='तुच्छोऽयं जन्तु'
रिति परित्यज्य, द्विपं=गजं, निहन्ति=आक्राम्यति, कृच्छ्रगतः=दुःखगतः, अपि,

सर्वः=सम्पूर्णः, जनः=लोकः, सत्त्वानुरूपं=स्वस्वभावानुकूलं, फलम्=अभीप्सितं, वाञ्छति=इच्छति । अत्रापि पूर्वोक्तं वृत्तम् ॥ ३० ॥

(समासः) स्नायुश्च वसा च स्नायुवसे ताभ्यामवशेषम्, अत एव मलिनं स्नायुवसावशेषमलिनम् । क्षुधायाः शान्तिः क्षुधाशान्तिस्तस्यै । कृच्छ्रं गतः कृच्छ्रगतः । सत्त्वस्याऽनुरूपं सत्त्वानुरूपम् ॥ ३० ॥

(कोषः) ... अथ वस्नसा । स्नायुः स्त्रियाम् मेदस्तु वपा वसा । कीकसं कुत्थमस्थि च । शृगाल-वन्धक-क्रोष्टु-फेर-फेरव जम्बुकाः । 'सत्त्वं गुणे पिशाचादौ बले द्रव्यस्वभावयोः' इति मेदिनी ॥ ३० ॥

(सरलार्थः) स्नायोर्वसायाश्चावशेषभागेन मलिनं मांसरहितं स्वल्पमपि गोरस्थि प्राप्य कुक्कुरो यद्यपि सन्तोषं प्राप्नोति, तथापि तेनाऽस्थना तस्य क्षुधाशान्तिर्न भवति । सिंहस्तु स्वाङ्के प्राप्तमपि शृगालं 'क्षुद्रजन्तुरय'-मिति बुद्ध्या परित्यज्य गजमेव हन्ति । दुःखगतोऽपि स्वानुकूलं फल-मभिलषतीत्यर्थः ॥ ३० ॥

(मनोरमा) स्नायु तथा मेद (चर्मा) के अवशिष्ट अंश के होने के कारण मैली सी, मांस रहित, थोड़ी भी गौ की हड्डी पाकर कुत्ता यद्यपि सन्तुष्ट हो जाता है, परन्तु उससे उसकी क्षुधा की शान्ति नहीं होती । सिंह तो अपने अङ्क तक आए हुए भी सियार को साधारण जन्तु समझकर उसे छोड़ हाथी पर ही आक्रमण करता है । विपत्तिग्रस्त पुरुष भी अपने स्वभाव के अनुसार फल की कामना करता है ॥ ३० ॥

क्षुद्रजनास्तुच्छाः महाजना धीरा इति श्वगजदृष्टान्तेन प्रकट्यन्नाह—

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं

भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनञ्च ।

श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुङ्गवस्तु

धीरं विलोकयति चादुश्चैतश्च भुङ्क्ते ॥ ३१ ॥

6. (मानवः) श्वा पिण्डदस्य लाङ्गूलचालनं, (तथा) अधः, चरणा-

वपातं, (तथा) भूमौ, निपत्य, वदनोदरदर्शनं, कुरुते, गजपुङ्गवः, तु, धीरं, विलोकयति, चाटुशतैः, भुङ्क्ते ॥ ३१ ॥

(वालमनोरञ्जनी) श्वा=कुक्कुटाः, पिण्डदस्य=कवलदायिनः, पुरतः पिण्डलोभेनेति शेषः । लाङ्गूलचालनं=पुच्छकम्पनं, (तथा), अधः=अधोभागे, चरणावपातं=पादपातनं, (तथा) भूमौ=पृथिव्यां, निपत्य=पतित्वा, वदनोदरदर्शनं=चलज्जीह्वमुखस्वोदरयोर्दर्शनं, कुरुते=विदधाति, गजपुङ्गवः=गजश्रेष्ठः, तु, धीरं=गम्भीरं, विलोकयति=अवलोकयति, चाटुशतैः=प्रियवाक्यशतैः प्रार्थितः सन्नितिशेषः । भुङ्क्ते=अश्नुते । एवमेव क्षुद्रः श्ववल्लोभेन मुखचालनादिकरोति, महाजनस्तु धैर्येण पश्यन्नत्यादरयुक्तैः प्रियवचनैश्लाघितः सन् भुङ्क्ते, इत्याशयः । अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् ॥ ३१ ॥

(समासः) लाङ्गूलस्य चालनं लाङ्गूलचालनम् । चरणधोरवपातश्चरणावपातस्तम् । वदनञ्चोदरञ्च वदनोदरे तयोर्दर्शनम् । चाटूनां शतानि तैः ॥ ३१ ॥

(कोषः) पुच्छोऽस्त्री लमलाङ्गूले । ग्रासस्तु कवलः पुमान् । वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम् ॥ ३१ ॥

(सरलार्थः) कुक्कुरः कवलदायिनः पुरतः पिण्डलोभेन पुच्छचालनं तथा भूमौ पतित्वा स्वमुखमुदरञ्च दर्शयति । परन्तु गजपुङ्गवः स्वकवलदायिनः (स्वामिनः) पुरतः गाम्भीर्येण विलोकयति, तथा च तस्य प्रियवाक्यशतैरभ्यर्थितः सन्नश्नुत इत्यर्थः ॥ ३१ ॥

(मनोरमा) कुत्ता अपने ग्रास (कौर) देने वाले स्वामी के सामने जाकर अपनी पूँछ हिलाता और अपना मुँह पेट दिखाता है । परन्तु श्रेष्ठ हाथी अपने स्वामी की तरफ धीरता पूर्ण देखता और उसके अनेक बार कहने पर खाता है ॥ ३१ ॥

येन पुरुषेण वंशसमुन्नतिर्भवति स एव गरीयान्नान्य इत्याह—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥ ३२ ॥

(अन्वयः) परिवर्तिनि, संसारे, कः, न, जायते, (जातः) कः, वा, न, मृतः, (परन्तु) येन, जातेन, वंशः, समुन्नतिं, याति, सः, जातः ॥ ३२ ॥

(बालमनोरञ्जनी) परिवर्तिनि=आगमविनाशवति, संसारे=मर्त्यलोके, कः=कः पुरुषः, न=नो, जायते=समुत्पद्यते, अर्थात्सर्वोऽपि जायत एवेत्यर्थः । (जातः) को वा न, मृतः=प्राणैर्विमुक्तः, ये जातास्ते सर्वेऽपि मृता इत्यर्थः । (परन्तु) येन, जातेन=उत्पन्नेन (पुरुषेण) वंशः=कुलं, समुन्नतिम्=उत्कर्षं, याति=प्राप्नोति, सः=वंशोत्कर्षवर्द्धकः, जातः=उत्पन्नः, अन्यो जातोऽप्यजात एवेत्यर्थः । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ ३२ ॥

(समासः) सम्यगुन्नतिः समुन्नतिस्ताम् ॥ ३२ ॥

(कोषः) सन्ततिर्गोत्र-जनन-कुलान्यभिजनान्वयौ ॥ वंशोऽन्ववायः सन्तानः ॥ ३२ ॥

(सरलार्थः) परिवर्तनशीलेऽस्मिन् संसारे को न जायते, जातश्च को वा न मृतः । अर्थात् सर्वेऽपि जायन्ते, जाता मृताश्च । परन्तु, स एव जातः, येन वंशः समुन्नतिं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥ ३२ ॥

(मनोरमा) इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं उत्पन्न होता और मरता है । परन्तु वही उत्पन्न समझा जाता है, जिसके द्वारा वंश उन्नतिशील हो ॥ ३२ ॥

द्विविधं हि महतां वर्त्तनमिति कुसुमस्तवकदृष्टान्तेन वदति—

* कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः ।

मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥ ३३ ॥

(अन्वयः) कुसुमस्तवकस्य, इव, मनस्विनः, द्वयी, वृत्तिः, सर्वलोकस्य मूर्ध्नि, वा, शीर्यते, वने, एव, वा ॥ ३३ ॥

* अयमेव (३३) श्लोकः पाठभेदेन चतुरधिकशतश्लोके दृश्यते, परन्तु सर्वत्र दृष्टवान्मयाऽपि न निष्कासितः ।

(बालमनोरञ्जनी) कुसुमस्तवकस्य=पुष्पसमूहस्य, इव, मनस्विनः=विचारयतः, (पुरुषस्य), द्वयी=द्विप्रकारिका, अत्र द्वौ अवयवौ यस्या इति विग्रहे “संख्याया अवयवे तयप्” इति तयपि, तस्य “द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा” इत्ययच्चि, “टिङ्हाणञ् द्वयसज्” इत्यादिना ङीपि च कृते पूर्वोक्तरूप-सिद्धिः । वृत्तिः=वर्त्तनं, स्थितिरिति यावत् । (द्विप्रकारकत्वञ्च-श्रोतरि सति हितोपदेशकरणमेकम् । तदभावे मौनमालम्ब्य स्थितिर्द्वितीयम् । यथा सति ग्रहीतरि कुसुमस्तवकेन) सर्वलोकस्य=निखिललोकस्य, मूर्ध्नि=मस्तके, (आरुह्यते), अथवाऽसति, ग्रहीतरि नने=विपिने, एव, शीर्यते=प्रणश्यते । तथा मनस्विनः श्रोतरि सति हितोपदेशकरणेन पूज्या भवन्ति, श्रोतुर-भावे सति मौनमालम्ब्य तिष्ठन्तीति भावः । अत्र श्लोके ‘अनुष्टुप्’ नाम वृत्तम् ॥३३॥

(समासः) कुसुमानां स्तवकः कुसुमस्तवकस्तस्य । सर्वश्चासौ लोकः सर्वलोकस्तस्य ॥३३॥

(कोषः) द्वियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम् । स्याद्गुच्छकस्तु स्तवकः ॥३३॥

(सरलार्थः) यथा सति ग्रहीतरि पुष्पगुच्छो मूर्ध्नि तिष्ठति, असति तु वने एव नश्यति, तद्वन्मनस्विनोऽपि द्विप्रकारिका वृत्तिर्भवति, तत्रैका सति श्रद्धालौ हितोपदेशकरणेन सर्वलोकस्य मूर्ध्नि स्थितिः । द्वितीया च-असति तस्मिन् तूष्णींभावेन स्थितिरित्यर्थः ॥३३॥

(मनोरमा) पुष्पसमूह की भाँति विचारशील पुरुष की दो ही गतियाँ हैं—जिस प्रकार किसी ग्राहक के रहने पर पुष्पसमूह शिर पर रख लिया जाता है । ठीक इसी प्रकार श्रद्धालु श्रोता के रहने पर अच्छे २ उपदेश करने से विचारशील पुरुष सबके शिर पर चढ़ जाते हैं अथवा किसी श्रद्धालु के न रहने से न पूछे जाने के कारण घर में ही चुपचाप बैठकर दिन व्यतीत करते हैं ॥३३॥

दुर्जनः स्वपराक्रमप्रसिद्धयर्थं तेजस्विनं पुरुषं पीडयति नात्पतेजसमिति राहुदृष्टान्तेन वदति—

सन्त्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतयः सम्भाविताः पञ्चषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते ।

द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भास्करो

भ्रान्तः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षाविशेषाकृतिः ॥ ३४ ॥

(अन्वयः) बृहस्पतिप्रभृतयः, पञ्चषाः, अन्ये, अपि, सम्भाविताः, सन्ति, (परन्तु) शीर्षाविशेषाकृतिः, दानवपतिः, एष, राहुः, विशेषविक्रमरुचिः, तान्, प्रति, न, वैरायते, (किन्तु) भ्रान्तः, भास्करो, द्वौ, दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ, एव, पर्वणि, ग्रसते, पश्य ॥ ३४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) बृहस्पतिप्रभृतयः=गुरुप्रमुखाः, पञ्चषाः=पञ्च वा षड् वा, अत्र “संख्ययाव्ययासञ्चादूराधिकसंख्याः संख्येये” इति बहुव्रीहौ “बहुव्रीहौ संख्येये” इति समासान्तो ङच् । अन्ये=अपरे, अपि, सम्भाविताः=मान्या ग्रहाः, सन्ति=विद्यन्ते, (परन्तु) शीर्षाविशेषाकृतिः=मस्तकाऽवशिष्टाकारः, दानवपतिः=दानवानां स्वामी, एषः=असौ, राहुः=‘राहु’ नामा दैत्यः, (यतः) विशेषविक्रमरुचिः=अधिकपराक्रमानुरागः, (अतः ’ तान्=बृहस्पतिप्रभृतीन् ग्रहान्, प्रति, न=नो, वैरायते=वैरं कुरुते, अत्र “शब्दवैरकलहाभ्रकण्वमेवेभ्यः करणे” इति क्यङ् भवति । किन्तु, भ्रान्तः=भ्रमणं कुर्वन्, भास्करो=प्रकाशकौ, द्वौ=उभौ, दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ=दिवाकरनिशाकरौ, एव पर्वणि=पूर्णिमायाममायाञ्च, ग्रसते=भक्षयते, पीडयतीति यावत् । पश्य=अवलोक्य, इति जनं प्रति सम्बोधयति । यथा राहुरन्यान् बृहस्पतिप्रमुखान् ग्रहान्विहायाऽतितेजस्विनौ दिवाकरनिशाकरौ पीडयति तथैव दुर्जनोऽपि स्वपराक्रमप्रसिद्धयर्थं स्वल्पं जनं विहाय प्रवलमेव पीडयतीति भावः । अत्र श्लोके ‘शार्दूलविक्रीडितं’ नाम वृत्तम् ॥ ३४ ॥

(समासः) बृहस्पतिः प्रभृतिर्येषां ते । शीर्षमेवाविशेषाऽऽकृतिर्यस्य सः ।

विशेषो यो विक्रमस्तस्मिन् रुचिर्यस्य सः । दिनेश्वरश्च निशाप्राणेश्वरश्च
दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ ॥ ३४ ॥

(कोषः) उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मग्नकोऽब्धियाम् । विक्रम-
स्त्वतिशक्ता । तिथिभेदे क्षणो पर्व ॥ ३४ ॥

(सरलाथः) यद्यप्यन्येऽपि बृहस्पतिप्रमुखा ग्रहाः सन्ति, तथापि शिरो-
मात्रावशिष्टो विशेषपराक्रमानुरागो राहुस्ताञ्च ग्रसते, अपि तु पूर्णिमायां
चन्द्रमसं तथाऽमायां सूर्यमेव ग्रसते इत्यर्थः ॥ ३४ ॥

(मनोरमा) यद्यपि बृहस्पति आदि कई बड़े-२ ग्रह विद्यमान हैं फिर
भी विक्रमशाली राहु उन सभी को कभी दुःख नहीं देता, परन्तु अमावास्या
तथा पूर्णिमा के दिन यह दैत्यराज जिसका सिर्फ शिर ही अवशिष्ट है बड़े
तेजस्वी सूर्य तथा चन्द्रमा को ही ग्रसता है । (इसी प्रकार अपने पराक्रम की
प्रसिद्धि के लिए दुर्जन बड़ों को ही दुःख देता है) ॥ ३४ ॥

महाजनानां चरित्रं निर्मर्यादमस्तीत्युच्यते—

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फणाफलकस्थितां

कमठपतिना मध्ये पृष्ठं सदा स विधार्यते ।

तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोधिरनादरा—

दहह महतां निःसीमानश्चरित्रविभूतयः ॥ ३५ ॥

(अन्वयः) शेषः, फणाफलकस्थितां, भुवनश्रेणीं, वहति, सः, कमठ-
पतिना, मध्येपृष्ठं, सदा, विधार्यते, तम्, अपि, पयोधिः, अनादरात्, क्रोडा-
धीनं, कुरुते, अहह, महतां, चरित्रविभूतयः, निःसीमानः (सन्ति) ॥ ३५ ॥

(बालमनोरञ्जनी , शेषः=सहस्रशीर्षो भगवाननन्तः, फणाफलक-
स्थितां=स्फटापट्टिकास्थितां, भुवनश्रेणीं=जगत्पङ्क्तिं, वहति=धारयति, सः=शेषः,
कमठपतिना=कूर्मरूपधारिणा भगवता, मध्येपृष्ठं=पृष्ठस्य मध्यभागे, सदा=सर्व-
स्मिन्काले, विधार्यते=विशेषेण धार्यते इत्यर्थः । तं=कमठपतिम्, अपि,
पयोधिः=समुद्रः, अनादरात्=अनायासेनेत्यर्थः । क्रोडाधीनम्=उत्सङ्गाधीनं,

कुरुते=अभ्यन्तरे धारयतीत्यर्थः । अहह=आश्चर्यं, महतां=महाजनानां, चरित्र-
विभूतयः=चरित्रैश्वर्याणि, निःसीमानः=निरवधयः, सन्तीति शेषः । अत्र
श्लोके 'हरिणी' नाम वृत्तम् । अस्य लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥३५॥

(समासः) फणानां फलकं फणाफलकं तत्र स्थिता ताम् । भुवनस्य
श्रेणी भुवनश्रेणी ताम् । कमठस्य पतिः कमठपतिस्तेन कमठपतिना । पृष्ठस्य
मध्ये मध्येपृष्ठम् । क्रोडस्याधीनं क्रोडाधीनम् ॥३५॥

(कोषः) स्फटायां तु फणा द्वयोः । वीथ्यालिरावालः पंक्तिः श्रेणी ।
कूर्मे कमठकच्छपौ । 'क्रोडमङ्कस्तथोत्सङ्गः' इति हलायुधः ॥३५॥

(सरलार्थः) भगवान् शेषः स्वफणापट्टिकास्थितां जगत् पंक्तिं धार-
यति । सः सदा कूर्मरूपेण भगवता स्वपृष्ठस्य मध्यभागे धार्यते । तमपि समु-
द्रोऽनायासेन स्वाङ्कस्याभ्यन्तरे धारयति । अहो ! महतां चरितसम्पत्तयो
निरवधयो भवन्तीत्यर्थः ॥३५॥

(मनोरमा) शेष भगवान् अपने फणों पर सारे जगत् के भार को
ग्रहण करते हैं, और वही शेष भगवान् कच्छपरूप धारण कर सारे जगत् के
भार को अपनी पीठ पर धारण करते हैं । उनको भी समुद्र अनायास अपनी
गोद में धारण कर लेता है, अहो ! बड़े लोगों की चरित्र रूपी सम्पत्ति
असीम होती है ॥३५॥

क्लेशविवशं पितरं परित्यज्यान्यत्र स्वप्राणसंरक्षणं नोचितमित्युच्यते—

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-

प्रहारैरुदगच्छद्ब्रह्मलदहनोद्गारगुरुभिः ।

तुषाराद्रेः सूनोरहह ! पितरि क्लेशविवशे

न चासौ सम्पातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ॥३६॥

(अन्वयः) पितरि, क्लेशविवशे, (सति) पयसां पत्युः, पयसि,

तुषाराद्रेः, सूनोः, असौ, सम्पातः, न, उचितः, (किन्तु) उदगच्छद्ब्रह्मलदहनो-
द्गारगुरुभिः समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः पक्षच्छेदः वरम् ॥३६॥

(बाजमनोरञ्जनी) पितरि=हिमाद्रौ, क्लेशविवशे=दुःखाधीने (सति), पयसां पत्युः=समुद्रस्य, पयसि=जले, तुषाराद्रेः=हिमालयस्य, सूनोः='मैनाक'-नाम्नः पुत्रस्य, असौ=एषः, सम्पातः=पतनं, न=नो, उचितः=योग्यः, (किन्तु) उद्गच्छद्ब्रह्मलदहनोद्गारगुरुभिः=उद्गच्छदतिशयितकृशानूद्गारगुरुभिः, समदमघवन्मुक्तकुलिशप्रहारैः=समदेन्द्रत्यक्तवज्रपातैः, पक्षच्छेदः=पक्षच्छेदनं, वरं=श्रेष्ठः, आसीदिति शेषः । एतेन स्वयमापदि विद्यमानेनाप्यापद्गतपितुस्त्यागो न कर्तव्य इति सूच्यते । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वतोऽनुसन्धेयम् ॥३६॥

(समासः) क्लेशस्य विवशः क्लेशविवशस्तस्मिन् । तुषारस्याद्रिस्तुषाराद्रिस्तस्य । उद्गच्छन् यो बहलो दहनस्तस्योद्गारस्तेन गुरुभिरुद्गच्छद्ब्रह्मलदहनोद्गारगुरुभिः । मदेन सहितः समदः स चाऽसौ मघवान् तेन मुक्तं कुलिशं तस्य प्रहारास्तैः ॥३६॥

(कोषः) अवश्यायस्तु नीहारस्तुषारस्तुहिनं हिमम् । इन्द्रो मरुत्वान्मघवा विडौजाः पाकशासनः । ह्लादिनी वज्रमस्त्री स्यात्कुलिशं भिदुरं पविः ॥३६॥

(सरलार्थः) समदेन मघवता प्रक्षिप्तैः कुलिशप्रहारैः पक्षच्छेदनं वरमासीत्, परन्तु पितरि हिमालये क्लेशाधीने सति तस्य सूनोर्मैनाकस्य तं विहाय समुद्रस्य पयसि पतनं न युक्तमासीदित्यर्थः ॥३६॥

(मनोरमा) मद से भरे इन्द्र के द्वारा किए गए वज्र के प्रहारों से पंख का कट जाना अच्छा था, परन्तु अपने पिता हिमालय को क्लेश में पड़े हुए देखकर उन्हें छोड़ अपने विश्राम के लिए समुद्र के भीतर हिमालय के लड़के मैनाक का चला जाना उचित न था ॥३६॥

तेजस्वी चेतनः पुरुषः परकृतविकृतिं न सहत इति सूर्यकान्तदृष्टान्तेन वंदति—

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुरिनकान्तः ।

तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकृतिं कथं सहते ॥३७॥

(अन्वयः) यत्, अचेतनः, अपि, इनकान्तः, सवितुः, पादैः, स्पृष्टः (सन्), प्रज्वलति, तत्, तेजस्वी, पुरुषः, परकृतविकृतिं, कथं, सहते ॥३७॥

(वालमनोरञ्जनी) यत्=यस्मात्, अचेतनः=चेतनारहितः, अपि, इनकान्तः=सूर्यकान्तः, सवितुः=सूर्यस्य, पादैः=किरणैः (पक्षे-चरणैः) स्पृष्टः=कृतस्पर्शः (सन्), प्रज्वलति=प्रदीप्तो भवति, तत्=तस्मात्, तेजस्वी=प्रभावशाली, पुरुषः=नरः, परकृतविकृतिम्=अन्यकृतविकारं, कथं=केन प्रकारेण, सहते=शमते, न सहत इत्यर्थः । अत्र श्लोके 'आर्या' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥३७॥

(समासः) न चेतनोऽचेतनः । परेण कृता या विकृतिः सा परकृत-विकृतिस्ताम् ॥३७॥

(कोषः) भानुर्हसः सहस्रांशुस्तपनः सविता रविः ॥३७॥

(सरलार्थः) चेतनारहितोऽपि सूर्यकान्तः सूर्यस्य किरणैः स्पृष्टः सन्नेव प्रदीप्तो भवति, तर्हि चेतनायुक्तस्तेजस्वी पुरुषः परकृतविकारं कथं सोढुं शक्नोति, कथमपि न शक्नोतीत्यर्थः ॥३७॥

(मनोरमा) यद्यपि सूर्यकान्तमपि अचेतन है फिर भी सूर्य की किरणों का स्पर्श होते ही जल उठती है, तो भला चेतनायुक्त तेजस्वी पुरुष दूसरे के द्वारा किए गए अपमान को कैसे सह सकता है, (अर्थात् कभी नहीं सह सकता) ॥३७॥

पराक्रमोद्दीपकस्य तेजसो हेतुः प्रकृतिरेव न वय इति सिंहशिशुः

दाहरणेनाऽऽह—

सिंहः शिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।

प्रकृतिरियं सत्त्ववतां न खलु वयस्तेजसो हेतुः ॥३८॥

(अन्वयः) शिशुः, अपि, सिंहः, मदमलिनकपोलभित्तिषु, गजेषु, निपतति, इयं, सत्त्ववतां, प्रकृतिः, एव, वयः, तेजसः, हेतुः, न, खलु ॥३८॥

(बालमनोरञ्जनी) शिशुः=बालः, अपि, सिंहः=मृगः, मदमलिन-
कपोलभित्तिषु=गजमदमलिनीकृतकपोलप्रदेशेषु, 'कपोलभित्तिषु' इत्यत्र 'प्रशंसा-
वचनैश्च' इति समासः । गजेषु=दन्तिषु, निपतति=वधाय धावति, इयम्=एषा,
सत्त्ववतां=बलवतां, प्रकृतिः=स्वभावः, एव, वयः=अवस्था, तेजसः=पराक्रमस्य,
हेतुः=कारणं, न=ना, खलु=निश्चयेनेत्यर्थः । अत्र 'आर्या' नाम वृत्तम् ।
तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ३८ ॥

(समासः) प्रशस्ताः कपोलाः कपोलभित्तयः, (विग्रहस्तु समासे
प्रेक्षणीयः । 'भित्ति' शब्दः प्रशस्तवचनः—यद्वा, प्रदेशवाचकः । मदेन
मलिनाः कपोलभित्तयस्तेषु तथोक्तेषु ॥ ३८ ॥

(कोषः) "भित्तिः प्रदेशे कुड्ये च" इति विश्वः । 'भित्तिः स्त्री
कुड्यम्' इत्यमरः ॥ ३८ ॥

(सरलार्थः) शिशुरपि सिंहो मदमलिनगण्डस्थलेषु गजेषु तद्वधं कर्तुं
धावति । बलवतामेषा प्रकृतिः, न खलु तेजसोऽवस्था हेतुरस्तीत्यर्थः ॥ ३८ ॥

(मनोरमा) सिंह बच्चा होता हुआ भी मतवाले हाथियों के मस्तकों
पर आघात करने के लिए दौड़ पड़ता है । बलशाली प्राणियों का यह स्वभाव
है । यह निश्चय है कि अवस्था ही तेज का कारण नहीं होता ॥ ३८ ॥

द्रव्यं विना सर्वे गुणास्तुच्छप्राया इत्युच्यते—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याऽप्यधो गच्छता—

च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः संदह्यतां वह्निना ।

शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं

येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥ ३९ ॥

(अन्वयः) जातिः, रसातलं, यातु, गुणगणः, तस्य, अपि, अधः,
गच्छतात्, शीलं, शैलतटात्, पततु, अभिजनः, वह्निना, संदह्यतां, शौर्ये,
वैरिणि, वज्रम्, आशु, निपततु, (परन्तु), नः, केवलम्, अर्थः, अस्तु,
एकेन, येन, विना, इमे, समस्ताः, गुणाः, तृणलवप्रायाः (भवन्ति) ॥ ३९ ॥

(वालमनोरञ्जनी) जातिः=ब्राह्मणादिस्वजातिः, रसातलं=पातालं, यातु=गच्छतु, गुणगणः=दयादाक्षिण्यादिगुणसमूहः, तस्य=रसातलस्य, अपि, अधः=अधोभागे, गच्छतात्=व्रजतात्, शीलं=सद्वृत्तं, शैलतटात्=पर्वततटात्, पततु=पतताम्, अभिजनः=वंशः, वह्निना=अग्निना, संदह्यतां=भस्मीक्रियतो, शौर्ये=शूरतारूपे, वैरिणि=शत्रौ, वज्रं=कुलिशम्, आशु=शीघ्रं, निपततु=पततु, एवं रीत्या सर्वस्यापि हानिर्भवतु, परन्तु —नः=अस्माकं, केवलम्=एकम्, अर्थः=धनम्, अस्तु=विद्यताम्, एकेन=मुख्येन, येन=धनेन, विना, इमे=पूर्वोक्ताः, समस्ताः=निखिलाः, गुणाः=दयादाक्षिण्यादयः, तृणलवप्रायाः=तृणलवसदृशाः, अतितुच्छा इति यावत्, भवन्तीति शेषः । अत्र श्लोके 'शार्दूल-विक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ३६ ॥

(समासः) रसायास्तलं रसातलम् । गुणानां गणो गुणगणः । शैलस्य तटं शैलतटं-तस्मात् । तृणस्य लवस्तृणलवस्तत्प्रायास्तृणलवप्रायाः ॥ ३६ ॥

(कोषः) शीलं स्वभावे सद्वृत्ते । सन्ततिर्गोत्रजननकुलान्यभिज नान्वयो । निर्णाति केवलमिति त्रिलिङ्गं त्वेककृतत्नयोः ॥ ३६ ॥

(सरलार्थः) ब्राह्मणादिस्वजाती रसातलं गच्छतु, गुणानां समूहो रसातलस्याऽप्यधोभागे गच्छतात्, शीलं पर्वततटाद्भ्रंशताम्, वंशोऽग्निना भस्मीक्रियताम्, शौर्यरूपे शत्रौ शीघ्रं वज्रं पततु, एवं सर्वमपि प्रणश्यतु, परन्तु केवलं धनमस्माकमस्तु । एकं यद्धनमन्तरा सर्वेऽपि दयादाक्षिण्यादयो गुणा अतितुच्छा भवन्तीत्यर्थः ॥ ३६ ॥

(मनोरमा) ब्राह्मणादि जाति रसातल को चली जाय और गुण समूह उससे भी नीचे जाय, शील पर्वत के तट से नीचे गिर कर नष्ट हो जाय, वंश आग से जल कर खाक हो जाय, शूरतारूपी शत्रु पर वज्र भले गिर पड़े, परन्तु हमारा केवल धन रह जाय, जिस एक धन के बिना सारे गुण व्यर्थ हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

अन्वयव्यतिरेकाभ्यामर्थस्य सर्वापेक्षया प्राधान्यं श्लोकद्वयेन वदति —

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म

सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।

अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव

त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ॥४०॥

(अन्वयः) सकलानि, इन्द्रियाणि, तानि, (एव), कर्म, तद्, एव, अप्रतिहता, बुद्धिः, सा, एव, वचनं, तद्, एव, पुरुषः, सः, एव, (किन्तु), अर्थोष्मणा, विरहितः, (सन्), क्षणेन, अन्यः, इव, भवति, इति, एतत्, विचित्रम् ॥ ४० ॥

(बालमनोरञ्जनी) सकलानि=सम्पूर्णानि, इन्द्रियाणि=वागादीनि, तानि=पूर्वसिद्धानि, एव, कर्म=क्रिया, तत्=पूर्वकालिकम्, एव, अप्रतिहता=अकुण्ठिता, बुद्धिः=मतिः, सा=यादृशी पूर्वमासीत्स्वरूपा, एव, वचनं=वाक्यं, तत्=पूर्वसिद्धम्, एव, पुरुषः=नरः, सः=पूर्वकालिकः, एव, (किन्तु) अर्थोष्मणा=द्रव्योष्मणा, विरहितः=शून्यः (सन्), क्षणेन=क्षणमात्रेण, अन्यः=अपरः, एव, भवति=जायते, इति=इत्थम्, एतत्=इदं, विचित्रम्=आश्चर्यम्, एकमर्थमन्तरैव, सर्वाण्यपीन्द्रियाणि व्यर्थानि भवन्ति, तस्मादर्थोपार्जनं पुरुषेणावश्यमेव कर्तव्यमिति भावः । एतेन व्यतिरेको दर्शितः । अत्र 'वसन्ततिलकः' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ४० ॥

(समासः) न प्रतिहताऽप्रतिहता । अर्थस्योष्माऽर्थोष्मा तेन अर्थोष्मणा ॥ ४० ॥

(कोषः) कर्म क्रिया । बुद्धिर्मनीषा धीषणा धीः प्रज्ञा शेमुषी मतिः । व्याहार उक्तिर्लेपितं भाषितं वचनं वचः ॥ ४० ॥

(संरत्नार्थः) सर्वाण्यपि वागादीनीन्द्रियाणि तान्येव सन्ति, तदेव च कर्म, सा एव च बुद्धिरस्ति, वचनमपि यत्पूर्वमासीत्तदेवेदानीमप्यस्ति, स एव पुरुषोऽस्ति, किन्तु द्रव्यं विना अन्य एव भवतीति महदाश्चर्यमेतदित्यर्थः ॥४०॥

(मनोरमा) वे ही सारी इन्द्रियाँ हैं, वही किया है, वही तीक्ष्ण बुद्धि अब भी है, और वही वचन है—किन्तु धन की गर्माँ के बिना ये सभी क्षण भर में दूसरे हो जाते हैं—यह आश्चर्य है ! ॥ ४० ॥

अपि च—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः,

स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।

स एव वक्ता स च दर्शनीयः

सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥४१॥

(अन्वयः) यस्य, वित्तम्, अस्ति, सः, (एव), नरः, कुलीनः, सः, (एव) पण्डितः, सः, (एव) श्रुतवान्, सः, (एव) गुणज्ञः, सः, (एव) वक्ता, सः, (एव) च, दर्शनीयः, सर्वे, गुणाः, काञ्चनम्, (एव) आश्रयन्ति ॥४१॥

(बालमनोरञ्जनी) यस्य=यस्य पुरुषस्य, वित्तं=द्रव्यम्, अस्ति=विद्यते, सः=द्रव्ययुक्तः (एव), नरः=पुरुषः, कुलीनः=उत्कुलोत्पन्नः, सः=द्रव्यवान् (एव) पण्डितः=बुद्धिमान्, सः=पूर्वोक्तः (एव) श्रुतवान्=शास्त्रज्ञः, सः=पूर्वोक्तः (एव), गुणज्ञः=गुणवेत्ता, सः, (एव) वक्ता=वाग्मी, सः (एव) च, दर्शनीयः=दर्शनयोग्यः सुन्दराकृतिरित्यर्थः । सर्वे=पूर्वोक्ताः, गुणाः=कुलीनत्वपण्डित्यादयः, काञ्चनं=सुवर्णम्, (एव) आश्रयन्ति=अवलम्बन्ते, द्रव्ये सत्येव सर्वे गुणाः प्रकाशन्ते इत्यर्थः । एतेनान्वयो दर्शितः । अत्र श्लोके 'उपजाति' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ४१ ॥

(कोषः) "श्रुतमाकर्ण्यते शास्त्र" इति मेदिनी । स्वर्णं सुवर्णं कनकं हिरण्यं हेम हाटकम् । तपनीयं शातकुम्भं गाङ्गेयं भर्म कर्बुरम् ॥ चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने । रुक्मं कार्तस्वरं जाम्बूनदमष्टापदाऽस्त्रियाम् ॥४१॥

(सरलार्थः) यस्य पुरुषस्य पार्श्वे वित्तमस्ति स एव कुलीनः, स एव पण्डितः, स एव शास्त्रज्ञः, स एव गुणज्ञः, स एव वक्ता, स एव च द्रष्टुं योग्योऽस्ति, अतः सर्वे गुणाः सुवर्णमेवाश्रयन्तीत्यर्थः ॥४१॥

(मनोरमा) जिसके पास धन है वही कुलीन, पण्डित, शास्त्रज्ञ तथा गुणी है, वही वक्ता है, वही दर्शन करने योग्य है । क्योंकि सब गुण काञ्चन (सुवर्ण) के ही आश्रय से रहते हैं ॥ ४१ ॥

नृपत्यादयौ दौर्मन्यादिमिनश्यन्तीत्याह—

दौर्मन्थ्यान्वृपतिर्विनश्यति यतिः सङ्गात्सुतो लालना.

द्विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपासनात् ।

ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रया-

नैत्री चाप्रगयात्समृद्धिरनयात्यागात्प्रमादाद्धनम् ॥४२॥

(अन्वयः) नृपतिः, दौर्मन्त्र्यात्, विनश्यति, यतिः, सङ्गात्, सुतः, लालनात्, विप्रः, अनध्ययनात्, कुलं, कुतनयात्, शीलं, खलोपासनात्, हीः, मथात्, कृषिः, अपि, अनवेक्षणात्, स्नेहः, प्रवासाश्रयात्, मैत्री, अप्रणयात्, समृद्धिः, अनयात्, धनं, त्यागात्, च, प्रमादात् ॥ ४२ ॥

(बालमनोरञ्जनी) नृपतिः=राजा, दुर्मन्त्रिणो भावो दौर्मन्त्र्यं
तस्मात्=दुर्मन्त्रिसेवनात्, विनश्यति=स्वकीयराज्याद्भूष्टो भवति, यतिः=
सन्यासी, सङ्गात्=स्त्र्यादिसङ्गात्, (पूर्वोक्तरीत्या विनश्यतीत्यस्य सर्वत्रा-
ऽन्वयः कार्यः) सुतः=पुत्रः, लालनात्=अतिप्रेमकरणात्, शिक्षाद्यकरणा-
दित्यर्थः । विप्रः=ब्राह्मणः, अनध्ययनात्=स्वाध्यायविरहात्, कुलं=प्रतिष्ठा-
वान् वंशः, कुतनयात्=कुमार्गगामिनः पुत्रात्, शीलं=सद्बृत्तं, खलोपा-
सनात्=दुर्जनोपासनात्, ह्रीः=लज्जा, मद्यात्=मदिरायाः, कृषिः='खेती'
इति लोके प्रसिद्धा, अनवेक्षणात्=पुनः पुनरनवलोकनात्, स्नेहः=प्रेम, प्रवा-
साश्रयात्=अन्यत्र बहुदिवसवासात्, मैत्री=मित्रता, अप्रणयात्=अविनयात्,
समृद्धिः=ऐश्वर्यं, अनयात्=नीतेरभावात्, धनं=वसु, त्यागात्=कुपात्रेषु दानात्,
च=तथा, प्रमादात्=प्रमादकरणात्, विनश्यतीति पूर्वतोऽन्वयः । अत्र श्लोके
'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ४२ ॥

(समसः) न व्ययजनमन्ययनं तस्मात्, Digitized by eGangotri

स्तस्मात् । खतस्योपासनं खलोपासनं तस्मात् । न अवेषणमनवेक्षणं तस्मात् । न प्रणयोऽप्रणयस्तस्मात् । न नयोऽनयस्तस्मात् ॥ ४२ ॥

(कोषः) ये निर्जितेन्द्रियग्रामा यतिनो यतयश्च ते । शीलं स्वभावे सद्वृत्ते । पिशुनो दुर्जनः खलः । मन्दाक्षं ह्रीन्वपा ब्रीडा लज्जा ॥ ४२ ॥

(सरलार्थः) राजा दुर्मन्त्रिसेवनाद्विनश्यति, ब्रथादिसत्तात्सन्यासी विनश्यति, अतिप्रेमकरणात् पुत्रो विनश्यति, स्वाध्यायविरहाद्ब्राह्मणो विनश्यति, कुपुत्रात्सकुलं विनश्यति, सद्वृत्तं दुर्जनानामुपासनाकरणाद्विनश्यति, लज्जा मयाद्विनश्यति, वारं वारमनवलोकनात्कृषिः विनश्यति, अन्यत्र स्थितिकरणात्स्नेहो विनश्यति, अविनयान्मित्रता विनश्यति, ऐश्वर्यमनीतेर्विनश्यति, त्यागात्प्रमादकरणाच्च धनं विनश्यतीत्यर्थः ॥ ४२ ॥

(मनोरमा) दुष्ट मन्त्री से राजा का नाश होता है, स्त्री आदि के सङ्ग से सन्यासी नष्ट हो जाता है, अधिक प्यार करने से पुत्र विगड़ जाता है । अध्वयन न करने से ब्राह्मण का नाश हो जाता है । कुमार्गगामी पुत्र से प्रतिष्ठित कुल का नाश हो जाता है । दुर्जनों की सेवा करने से शील नष्ट हो जाता है । मय से लाज, बार बार न देखते रहने से खेती, परदेश जाने से स्नेह, मन्त्रता न रहने से मित्रता, अनीतिसे ऐश्वर्य, कुपात्रों में दान देने तथा प्रमाद करने से धन का नाश हो जाता है ॥ ४२ ॥

दानादिरहितस्य धनस्य सर्वथा नाशो भवतीत्युच्यते—

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।

यो न ददाति न भुङ्क्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति ॥ ४३ ॥

(अन्वयः) दानं, भोगः, नाशः, (एताः) तिस्रः, वित्तस्य, गतयः, भवन्ति, यः, न, ददाति, न, भुङ्क्ते, तस्य, तृतीया, गतिः, भवति ॥ ४३ ॥

(बालमनोरञ्जनी) दानं=सत्पात्रेषु धनविसर्जनं, भोगः=स्वाधितैः सह सुखोपभोगः, नाशः=चोरादिभिरपहरणम्, (एताः) तिस्रः=त्रिसंख्यकाः, वित्तस्य=धनस्य, गतयः=गमनप्रकाराः, भवन्ति=विद्यन्ते । अत्र सतिप्रत्ययवाह -

य=यः पुरुषः, (सत्पात्रेभ्यो) न=नो, ददाति=दानं करोति, (स्वयं च) न=नो, भुङ्क्ते=उपभोगं कुरुते, तस्य=तस्य पुरुषस्य द्रव्यस्य, तृतीया=तृतीयपदवाच्या 'नाश' नाम्नी, गतिः=गमनप्रकारा, भवति=अस्तीत्यर्थः । तस्मात्पुरुषेण धने सति नाशभयाद्दानं भोगश्चावश्यं कर्तव्य इति भावः । अत्र श्लोके 'आर्या' नाम वृत्तम् ॥ ४३ ॥

(क्लोषः) त्यागो विहापितं दानमुत्सर्जनविसर्जने । भोगः सुखैस्त्वयादि-भृतावहेश्च फणकाययोः ॥ ४३ ॥

(सरलार्थः) दानं, भोगो, नाशः, इत्येता एव धनस्य तिष्ठो गतयो भवन्ति । तत्र यः सत्पात्रेभ्यो दानं न ददाति स्वयम् नोपभुङ्क्ते तस्य पुरुषस्य धनस्य तृतीया 'नाशा' रूपा गतिर्भवतीत्यर्थः ॥ ४३ ॥

(मनोरमा) दान, भोग, और नाश धन की ये ही तीन गतियाँ हैं । उसमें, जो आदमी न सत्पात्रों को दान ही देता है या न स्वयं ही उस से सुख करता है तो उस आदमी के धन की तीसरी 'नाश' नामक गति है, अर्थात् चोरों के जरिये या किसी प्रकार उस धन का नाश हो जाता है ॥ ४३ ॥

बहुदानेन सम्पदा क्षीणोऽपि जनो विशेषेण शोभत इति

मण्यादिदृष्टान्तेन वदति—

मणिः शाणोल्लीडः समरविजयी हेतिनिहतो

मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यानपुलिनाः ।

कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालललना

स्तनिम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः ॥ ४४ ॥

(अन्वयः) शाणोल्लीडः, मणिः, हेतिनिहतः, समरविजयी, मदक्षीणः, नागः, शरदि, श्यानपुलिनाः, सरितः, कलाशेषः, चन्द्रः, सुरतमृदिता, बालललना, (एवम्) अर्थिषु, गलितविभवाः, जनाः, स्तनिम्ना, शोभन्ते ॥ ४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(वालमनोरजनी) शाणोल्लीडः=घषणप्रस्तरघषितः, मणिः=हीर-

कादिः, हेतिनिहतः=खड्गादिना कृतक्षतः, समरविजयी=युधि विजयशीलः, मदक्षीणः=गजमदक्षीणः, नागः=हस्ती, शरदि=शरत्काले, श्यानपुलिनाः=संकुचितबालुकामयप्रदेशाः, सरितः=नद्यः, कलाशेषः=कलावशिष्टः, चन्द्रः=चन्द्रमाः, सुरतमृदिता=रतिकाले आलिङ्गनचुम्बनादिनोपमर्दितावयवा, बाललललना=नवयौवना कामिनी, (एवम्) अर्थिषु=याचकेषु, गलितविभवा=संक्रामितसम्पदः, जनाः=पुरुषाः, स्तनिम्ना=क्षीणत्वेन, शोभन्ते=चकासति । एतेन पुरुषेणावश्यं दानं कर्तव्यमिति सूचितमिति भावः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् ॥ ४४ ॥

(समासः) शाणो उल्लीढः शाणोल्लीढः । हेतिना निहतो हेतिनिहतः । समरे विजयी समरविजयी । मदेन क्षीणो मदक्षीणः । श्यानानि पुलिनानि यासु ताः श्यानपुलिनाः । कलया शेषः कलाशेषः । सुरते मृदिता सुरतमृदिता । बाला चासौ ललना बालललना । गलितो विभवो यैस्ते गलितविभवाः ॥ ४४ ॥

(कोषः) शाणस्तु निकपः कपः । रत्नं मणिर्द्वयोश्चमजातौ मुक्तादिद्वेऽपि च । रवेरर्चिश्च शस्त्रञ्च वह्निज्वाला च हेतयः । तोयोत्थितं तत्पुलिनम् ॥ ४४ ॥

(सरलार्थः) शाणप्रस्तरघर्षितो मणिः, खड्गादिना कृतक्षतः संग्रामे विजयशीलो योद्धा, गजमदेन क्षीणो हस्ती, प्रतिपच्चन्द्रमाः, रतिकाले आलिङ्गनादिनोपमर्दिताङ्गी नवयौवना कामिनी, एवं याचकेषु दानात्क्षीणविभवाः पुरुषाश्च काश्येन शोभन्ते इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

(मनोरमा) शान पर खरादी गयी मणि और घत पाए हुए संग्राम में विजयशील योद्धा, मद से क्षीण हुआ हाथी, शरद कालमें सूखी बालुकामय (रेती पड़ी हुई) नदी, द्वितीया का चन्द्र, रतिकाल में अङ्ग प्रत्यङ्ग के मिस जाने से क्षीण हुई नवीन यौवन वाली वनिता, अधिक दान देने से क्षीण हुई सम्पत्ति वाला पुरुष, ये सब कृशता से ही शोभित होते हैं ॥ ४४ ॥

वस्तुनो लघुत्वगुरुत्वयोर्हेतुरवस्थैव नान्यदित्याह—

परिक्षीणः कश्चित्सृष्टयति यवानां प्रसृतये

स पश्चात्सम्पूर्णो गणयति धरित्रीं तृणसमाम् ।

अतश्चानैकान्त्याद्गुरुलघुतयाऽर्थेषु धनिना-

मवस्था वस्तूनि प्रथयति च सङ्कोचयति च ॥४५॥

(अन्वयः) कश्चित्, परिक्षीणः (सन्) यवानां, प्रसृतये, सृष्टयति, सः (एव) पश्चात्, सम्पूर्णः (सन्), धरित्रीं, तृणसमां, गणयति, अतः, अवस्था, (एव) गुरुलघुतया, च, वस्तूनि, प्रथयति च, सङ्कोचयति, च, धनिनाम्, अर्थेषु, अनैकान्त्यात् ॥ ४५ ॥

(बालमनोरञ्जनी) कश्चित्=कश्चिदेकः पुरुषः, परिक्षीणः=दरिद्रः (सन्), यवानां=शीतशूकानां, प्रसृतये=अर्द्धाञ्जलये, सृष्टयति=सृष्ट्वां करोति, दरिद्रावस्थायां तामेव प्रसृतिं महतीं मन्यत इत्यर्थः । स=प्रसृतिमेव महतीं मन्यमानः, एव, पश्चाद्=अनन्तरं, सम्पूर्णः=धनादिभिः परिपूर्णः (सन्), धरित्रीं=पृथ्वीं, तृणसमां=तृणतुल्यां, गणयति=गणनां करोति, धनिकावस्थायां पृथिवीमपि तुच्छां मन्यत इत्यर्थः । अतः=अस्माद्धेतोः, अवस्था=वयः (एव) गुरुलघुतया=गुरुत्वेन लघुत्वेन च, वस्तूनि=पदार्थान्, प्रथयति=विस्तारयति, च, सङ्कोचयति=लघयति, च । नन्वर्थेषु स्वरूपतो गुरुत्वलघुत्वे स्तः, किमव-स्थयेत्याशङ्कां निरस्यन्नाह- धनिनामिति । धनिनाम्=आढ्यानाम्, अर्थेषु=विषयेषु, अनैकान्त्यात्=स्वरूपतो गुरुत्वलघुत्वयोः, परस्परव्यभिचारात् । यो हि स्वरूपतो लघुर्भवति स दरिद्रावस्थायां गुरुर्भवति, यश्च स्वरूपतो गुरुर्भवति स धनिकावस्थायां लघुर्भवति, अतोऽवस्थैव गुरुत्वलघुत्वकारिणी भवतीति भावः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ४५ ॥

(समासः) तृणेन समा तृणसमा ताम् । गुरु च लघु च गुरुलघुनी तयोर्भावो गुरुलघुता तया गुरुलघुतया ॥ ४५ ॥

धराणिः क्षोणीर्ज्या काश्यपी क्षितिः । सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा ।
गोत्रा कुः पृथिवी पृथ्वी क्षमावनिर्मेदिनी मही ॥ ४५ ॥

(सरलार्थः) कश्चित्पुरुषो दरिद्रः सन्नर्धाब्जलिपरिमितयवार्थं स्पृहां करोति । स एव पुरुषरतत्पश्चादनादिभिः परिपूर्णः सन् सम्पूर्णा पृथिवीमपि तृणसमां मन्यते । अतोऽवस्थैव गुरुत्वेन लघुत्वेन च वस्तूनि विस्तारयति लघयति चेत्यर्थः ॥ ४५ ॥

(मनोरमा) कोई दरिद्र आदमी एक पसर जौ की इच्छा करता है, फिर वही आदमी सम्पत्तिमान् होने पर सारी पृथिवी तक को तृण के समान समझता है । इस लिए अवस्था ही सब चीजों को गुरु लघु और छोटा बड़ा बनाती है ॥ ४५-॥

राशां पृथिवीपालनप्रकारं बोधयति—

राजन् ! दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेतां

तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।

तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपोष्यमाणे

नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः ॥ ४६ ॥

(अन्वयः) हे राजन् !, यदि, एतां, क्षितिधेनुं, दुधुक्षसि, (तर्हि) तेन, अद्य, वत्सम्, इव, अमुं, लोकं, पुषाण, तस्मिन्, च, अनिशं, सम्यक्, परिपोष्यमाणे, (सति) नानाफलैः, कल्पलता, इव, भूमिः, फलति ॥ ४६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) हे राजन् ! = हे नृप !, यदि, एताम् = इमां, क्षितिधेनुं = पृथिवीरूपां गां, दुधुक्षसि = दोग्धुमिच्छसि, (तर्हि) तेन = दोहनेन अथवा दुधुक्षया हेतुना, अद्य, वत्सं = शकृत्करिम्, इव, अमुम् = एनं, लोकं = संसारं, पुषाण = पोषय, तस्मिन् = लोके, च, अनिशं = निरन्तरं, सम्यक् = उत्तमप्रकारेण, परिपोष्यमाणे = सेव्यमाने (सति) नानाफलैः = अनेकविधसस्यादिभिः, कल्पलता = कल्पद्रुमः इव, भूमिः = पृथिवी, फलति = फलं ददाति । एतेन बालमनोरमा-

पूर्वकं प्रजापालनमेव राज्ञा विधेयमिति सूचितम् । अत्र 'वसन्ततिलका' नाम
वृक्षम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ४६ ॥

(समासः) क्षितिरेव धेनुः क्षितिधेनुस्ताम् ॥ ४६ ॥

(क्रोपः) धेनुः स्यान्नवसूतिका । शकृत्करिस्तु वत्सः स्यात् । लोकस्तु
भुवने जने ॥ ४६ ॥

(सरलार्थः) हे राजन् ! यदि त्वं क्षितिरूपां धेनुं दोग्धुमिच्छसि तर्हि,
वत्समिवैनं संसारं परिपालय । तस्मिंश्च सम्यक्प्रकारेण परिपालिते सति
नानाविधैः सस्यादिफलैः कल्पलतेवेयं पृथिवी फलं ददातीत्यर्थः ॥ ४६ ॥

(मनोरमा) हे राजन् ! यदि तुम पृथिवी रूपी धेनु को दुहना चाहते
हो तो बछड़े के समान इस संसार का पालन करो । उसके अच्छी तरह
पालित होने पर अनेक प्रकार के फलों से कल्पलता की भाँति यह पृथिवी
फल देती है ॥ ४६ ॥

अनेकविधा राजनीतिरस्तीति वेदयादृष्टान्तेन वर्णयति—

सत्यानृता च परुषा प्रियवादिनी च

हिंसा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या ।

नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च

वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा ॥ ४७ ॥

(अन्वयः) [क्वचित्] सत्या, (क्वचिदित्यस्य सर्वत्राऽन्वयः
कार्यः) अनृता, च, परुषा, च, प्रियवादिनी, हिंसा, दयालुः, अपि च, अर्थ-
परा, वदान्या, नित्यव्यया च, प्रचुरनित्यधनागमा, वाराङ्गना, इव, नृपनीतिः,
अनेकरूपा (अस्ति) ॥ ४७ ॥

(बालमनोरञ्जनी) [क्वचित्] सत्या=सत्ययुक्ता, (एवं सर्वत्राऽपि
क्वचिदित्यस्यान्वयः कार्यः) अनृता=असत्ययुक्ता, च=तथा, परुषा=निष्ठुरा,
च=तथा, प्रियं वदतीति प्रियवादिनी=प्रियभाषणयुक्ता, हिंसा=भयानका,
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दयालुः=दयाशीला, अपि, अर्थपरा=धनतत्परा, वदान्या=दानशौण्डा, नित्य-
व्यग्रा=नित्यधनावगमा, च=तथा, प्रचुरनित्यधनागमा=अधिकनित्यधनप्राप्तिः,
वाराङ्गना=पण्यस्त्री, इव, नृपनीतिः=राजनीतिः, अनेकरूपा=अनेकप्रकारा,
अस्तीति शेषः । यथा वाराङ्गना सत्यानृतभाषणादियुक्ताऽनेकरूपा भवति तथैव
राजनीतिरप्यनेकप्रकाराऽस्तीति भावः । अत्र 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् ।
तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥४७॥

(समासः) अर्थे पराऽर्थपरा । नित्यं व्ययो यस्यां सा । प्रचुरो नित्यं
धनागमो यस्यां सा । नृपस्य नीतिर्नृपनीतिः । अनेकं रूपं यस्याः सा ॥४७॥

(कोषः) निष्ठुरं परुषं प्राम्यम् । शरारुर्धातुको हिंस्रः । स्युर्वदान्य-
स्थूललक्ष्यदानशौण्डा बहुप्रदे ॥४७॥

(सरलार्थः) क्वचित्सत्या, क्वचिदसत्या, क्वचिन्निष्ठुरा, क्वचित्प्रिय-
वादिनी, क्वचिद्धातुका, क्वचिह्यालु, क्वचिदर्थपरा, क्वचिदुदारा, क्वचि-
न्नित्यव्ययकारिणी, क्वचिच्चाधिकनित्यधनप्राप्तिरित्येवंभूता वेश्याङ्गनेव नृपनीति-
र्वहुविधा भवतीत्यर्थः ॥४७॥

(मनोरमा) कहीं पर सच्ची और कहीं झूठी, कहीं कड़ी और कहीं
मुलायम, कहीं क्रूर और कहीं दयामय, कहीं लोलुप और कहीं उदार, कहीं
अत्यन्त खर्च करने वाली और कहीं अधिक धन सञ्चय करने वाली इस
तरह वेश्याओं की भाँति राजा की नीति अनेक तरह की होती है ॥४७॥

आज्ञादयः षड्गुणा राजपुरुषेऽपेक्षितास्तदन्तरा तेषां राजाश्रयो

व्यर्थ इति वदति—

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां

दानं भोगो मित्रसंरक्षणञ्च ।

येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः

कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

(अन्वयः) आज्ञा, कीर्तिः, ब्राह्मणानां पालनं, दानं, भोगः, मित्रसंरक्षणं, च, एते षड्गुणाः, येषां, न प्रवृत्ताः, तेषां, पार्थिवोपाश्रयेण, कः, अर्थः ॥४८॥

(बालमनोरञ्जनी) आज्ञा=दुर्जनानां शासनं, कीर्तिः=सर्वदिक्षु यशः, ब्राह्मणानां पालनं=रक्षणं, दानं=सत्पात्रेभ्यो धनादिविसर्जनं, भोगः=सूक्ता-
म्बूलादेः स्तस्मिन्नुपभोगः, मित्रसंरक्षणम्=आपद्भयो मित्राणां संरक्षणं, च=
अपि, एते=पूर्वोक्ताः, षड्गुणाः=आज्ञादयः, येषां=येषां पुरुषाणां, न=नो,
प्रवृत्ताः=प्राप्ताः, तेषां=पुरुषाणां, पार्थिवोपाश्रयेण=राजाश्रयेण, कः अर्थः=किं
प्रयोजनं, किमपि प्रयोजनं नेति भावः । अत्र श्लोके 'शालिनी' नाम वृत्तम् ।
तद्वक्षणं—'शालिन्युक्ता मत्तौ तगौ गांश्चिलोकैः' इति ॥४८॥

(समासः) मित्राणां संरक्षणं मित्रसंरक्षणम् । षट् च ते गुणाः
षड्गुणा । पार्थिवस्योपाश्रयः पार्थिवोपाश्रयस्तेन पार्थिवोपाश्रयेण ॥४८॥

(कोषः) निदेशः शासनं च सः । शिष्टिश्चाज्ञा । यशः कीर्तिः
समज्ञा च ॥४८॥

(सरलार्थः) आज्ञा, कीर्तिः, ब्राह्मणानां पालनं, सत्पात्रेभ्यो दानं,
भोग, तथा मित्राणां संरक्षणं, एते षड्गुणा येषु न सन्ति, तेषां राजाश्रयेण
किं फलम् । किमपि फलं नास्तीत्यर्थः ॥४८॥

(मनोरमा) आज्ञा, कीर्ति, ब्राह्मणों का पालन, दान, भोग, और
मित्रों की रक्षा, जिसमें ये छः गुण नहीं हैं उसको राजा की सेवा का क्या
लाभ ? अर्थात् कुछ भी लाभ नहीं ॥४८॥

स्वप्रारब्धसञ्चितमेवार्थं पुरुषा लभन्ते नाधिकमिति षट्दृष्टान्तेन वदति—

यद्वात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोत्रं महद्वा धनं
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितगं मेरौ ततो नाधिकम् ।

तद्दीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः

कूपे पश्य पयोनिधावपि घटां गृह्णाति तुल्यं जलम् ॥४९॥

(अन्वयः) धात्रा, निजभालपट्टलिखितं, स्तोकं, महत्, वा, यत्, धनं, तत्, मरुस्थले, अपि, नितरां, प्राप्नोति, ततः, अधिकं, मेरौ, अपि, न, प्राप्नोति, तत्, धीरः, भव, वित्तवत्सु, कृपणां, वृत्तिं, वृथा, मा कृथाः, (हे जन ! त्वं) पश्य, घटः, कूपे, पयोनिधौ, अपि, तुल्यं, जलं, गृह्णाति ॥ ४६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) धात्रा=ब्रह्मणा, निजभालपट्टलिखितं=स्वकपाल-लिखितं, स्तोकम्=अल्पं, महत्=बहु वा, यत्, धनं=द्रविणं, तत्=तद्धनं, मरु-स्थले=निर्जलदेशे, अपि, प्राप्नोति=लभते । ततः=निजभालपट्टलिखितात् अधिकं, मेरौ=काञ्चनपर्वते, अपि, न, प्राप्नोति=लभते । तत्र=तस्मात्कार-णात्, धीरः=धैर्ययुक्तः, भव=तिष्ठ, वित्तमस्त्येषां ते तेषु वित्तवत्सु=धनिषु, कृपणां=दीनां, वृत्तिं=जीविकां, वृथा=व्यर्थं, मा कृथाः=माकुरु । (हे जन ! त्वं पश्य=अवलोकय, घटः=कुम्भः, कूपे=स्वल्पोदके उदपाने, पयोनिधौ=अगाध-पयसि समुद्रे, अपि, तुल्यं=स्वप्रमाणानुरूपं, जलं=वारि, गृह्णाति=ग्रहणं करोति, अधिकं नेत्यर्थः । विभवेच्छुना पुरुषेण लाभस्य स्वस्वप्रारब्धाधीनत्वाद्दनिषु कृपणाया जीविकया न वर्तितव्यमिति भावार्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ४६ ॥

(समासः) निजस्य भालपट्टे निजभालपट्टस्तस्मिन् लिखितं निजभाल-पट्टलिखितम् । पयसां निधिः पयोनिधिस्तस्मिन् पयोनिधौ ॥ ४६ ॥

(कोषः) ब्रह्मात्मभूः सुरज्येष्ठः परमेष्ठी पितामहः । हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः ॥ धाताब्जयोनिर्बृह्मिणो विरञ्चिः कमलासनः । स्रष्टा प्रजा-पतिर्वेधा विधाता विश्वसृङ्गविधिः । पुंस्येवान्धुः प्रहिः कूप उदपानं तु पुंसि वा ॥

(सरलार्थः) ब्रह्मणा यस्य स्वकपाले यत् स्तोकमधिकं वा धनं लिखितं तन्नितरां निर्जलदेशेऽपि स प्राप्नोति । ततोऽधिकं काञ्चनमये मेरावपि न प्राप्नोति । तस्माद्दैर्यमवलम्ब्य तिष्ठ । धनिषु पुरुषेषु दीनां वृत्तिं मा कुरु । हे जन ! त्वं, पश्य स्वल्पोदके कूपेऽगाधे पारावारे वा स्वप्रमाणानुरूपमेव जलं घटो गृह्णाति । कुतश्चापि न्यूनमाधिकं वा न गृह्णातीत्यर्थः ॥ ४६ ॥

(मनोरमा) ब्रह्मा ने जिसके ललाट पर जो थोड़ा या अधिक घन लिख दिया है, उसको मरुस्थल में भी वह पाता है, परन्तु अधिक सुवर्णमय मेरु पर्वत पर भी नहीं पाता । इस लिये धीरज के साथ रहो । किसी भी धनी आदमी के प्रति व्यर्थ अपनी दीनता न प्रकट करो । देखो, घड़ा चाहे कुएं में भरो या अगाध समुद्र में, पर वह अपने प्रमाण से अधिक जल कहीं से प्रहरण नहीं करता ॥ २६ ॥

स्वाश्रिते जने तत्कार्पण्योक्तिप्रतीक्षा न कर्तव्येति मेघान्योकया प्रदर्शयति—

त्वमेव चातकाधारोऽसीति केषां न गोचरः ।

किमम्भोदवरोऽस्माकं कार्पण्योक्तिं प्रतीक्षसे ॥ ५० ॥

(अन्वयः) हे अम्भोदवर !, अस्माकं, कार्पण्योक्तिं, किं, प्रतीक्षसे, (यतः) त्वम्, एव, चातकाधारः, असि, इति, केषां, गोचरः, न ॥ ५० ॥

(बालमनोरञ्जनी) हे अम्भोदवर ! = हे मेघश्रेष्ठ !, अस्माकं = चातकानां, कार्पण्योक्तिं = दीनतापूर्णोक्तिं, किं = किमर्थं, प्रतीक्षसे = इमे दीना भूत्वा यदा मां प्रार्थयिष्यन्ति तदा वृष्टिं करिष्यामीतीच्छसि, (यतः) त्वम्, एव, चातकाधारः = 'चातक', इत्याख्यपक्षिविशेषाश्रयः, सारङ्गाश्रय इति यावत् । असि = विद्यसे, इति = एतत्, केषां, गोचरः = प्रत्यक्षं न = न, अस्तीति शेषः । किन्तु सर्वेषामपि गोचर एवेत्यर्थः । तस्मात्स्वाऽऽश्रयीभूते जने तदीयकार्पण्योक्तिप्रतीक्षाकरणं सर्वथाऽनुचितमिति सूचितम् । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ ५० ॥

(समासः) अम्भोदेषु वरोऽम्भोदवरस्तत्सम्बुद्धौ हे अम्भोदवर ! कार्पण्यस्योक्तिः कार्पण्योक्तिस्ताम् । चातकानामाधारश्चातकाधारः ॥ ५० ॥

(कोषः) अन्नं मेघो वारिवाहः स्तनयितुर्बलाहकः । धाराधरो जलधरस्तडित्वान् वारिदोऽम्बुमृत् । घन-जीमूत-मुदिर-जलमुग्धूमयोनयः । अथ सारङ्गस्तोककश्चातकः समाः ॥ ५० ॥

(सरलार्थः) हे मेघश्रेष्ठ ! त्वमेव चातकानामाश्रयोऽसीति को न जानाति । तत्किमस्माकं चातकानां दीनतापूर्णोक्तिं प्रतीक्षसे इत्यर्थः ॥ ५० ॥

(मनोरमा) हे मेघश्रेष्ठ ! तूँ ही चातकों के आधार हो, यह कौन नहीं जानता ? तो फिर क्यों हम चातकों के दीनतापूर्ण वचनों की प्रतीक्षा करते हो ? ॥ ५० ॥

कस्यापि पुरतः पुरुषेण दीनवचनं न वक्तव्यमिति चातकान्योक्त्या प्रदर्शयति—

रे रे चातक ! सावधानमनसा मित्र ! क्षणं श्रूयता-

मम्भोदा बहवो हि सन्ति गगने सर्वे तु नैतादृशाः ।

केचिद्बृष्टिमिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद्बृथा

यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहि दीनं वचः ॥५१॥

(अन्वयः) रे रे चातक !, (हे) मित्र !, सावधानमनसा, क्षणं, श्रूयतां, हि, गगने, बहवः, अम्भोदाः, सन्ति, तु, सर्वे, एतादृशाः, न, (कुतः), केचित्, बृष्टिभिः, वसुधाम्, आर्द्रयन्ति, (तथा), केचित्, बृथा, गर्जन्ति, (तस्मात्), यं, यं, पश्यसि, तस्य, तस्य, पुरतः, दीनं, वचः, मा, ब्रूहि ॥५१॥

(वालमनोरञ्जनी) 'रे रे' इति वीप्सायां द्वित्वं, नीचसम्बोधने भवति । रे रे चातक ! = हे चातक !, हे मित्र ! = हे सखे !, सावधानमनसा = व्यग्रतारहितचित्तेन, क्षणं = क्षणमात्रपर्यन्तं, श्रूयताम् = आकर्ण्यतां, हि = यतः, गगने = व्योम्नि, बहवः = बहुसंख्याकाः, अम्भो ददतीत्यम्भोदाः = मेघाः, सन्ति = विद्यन्ते, तु = परन्तु, सर्वे = सम्पूर्णाः, एतादृशाः = कारुण्यपूर्णाः, न = न सन्ति, (कुतः) केचित् = केचन मेघाः, बृष्टिभिः = वर्षणैः, वसुधा = पृथिवीम्, आर्द्रयन्ति = क्लिन्नां कुर्वन्ति, (तथा) केचित् = केचन मेघाः, बृथा = मुधा, गर्जन्ति = गर्जनां कुर्वन्ति, न वर्षन्तीत्यर्थः । । तस्मात्) यं यं = मेघं, पश्यसि = अवलोकयसि, तस्य तस्य = मेघस्य पुरतः = अग्रे, दीनं = दीनतापूर्णं, वचः = वचनं, मा ब्रूहि = मा वद । एतेन दानशीला एवाऽन्यर्थनीया इति सूचितमिति भावार्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूल-विक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ५१ ॥

(समासः) अवधानेन सहितं सावधानं सावधानं च तन्मनः सावधान-
मनस्तेन ॥ ५१ ॥

(कोषः) स्वान्तं हृन्मानसं मनः । अथ मित्रं सखा सुहृत् । वृष्टिर्वर्षम् ।
व्याहार उक्तिर्लपनं भाषितं वचनं वचः ॥ ५१ ॥

(सरलार्थः) हे मित्र चातक ! व्यग्रतारहितेन मनसा क्षणमात्रमा-
कर्ण्यताम् । यतो बहवो मेघा आकाशे सन्ति, परन्तु सर्वे कारुणिका न भवन्ति,
कुतः—तेषु केचिद् वृष्टिं कृत्वा पृथिवीं जलान्वितां कुर्वन्ति केचिच्च वृथा
गर्जनामात्रं कुर्वन्ति । तस्मात्कारणात् यं मेघमवलोक्यसि तस्य तस्य मेघ-
स्याग्रे दीनतापूर्णं वचनं मा वदेत्यर्थः ॥ ५१ ॥

(मनोरमा) हे मित्र चातक ! सावधान होकर एक मिनट सुन तो
लो । यद्यपि आकाश में बहुत से मेघ दिखाई पड़ते हैं, पर सभी कारुणिक
नहीं हैं, क्योंकि कुछ तो वृष्टि करके पृथिवी को भिगो देते हैं, और कुछ
केवल गर्जना ही करके रह जाते हैं । इस लिये जिस जिस मेघ को देखो उन
सबके सामने दीन वचन न कहो ॥ ५१ ॥

स्वभावसिद्धं दुर्जनलक्षणं किमित्यत आह — ,

अकरुणत्वमकारणविग्रहः

परधने परयोषिति च स्पृहा ।

स्वजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता

प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम् ॥ ५२ ॥

(अन्वयः) अकरुणत्वम्, अकारणविग्रहः, परधने, च, परयोषिति,
स्पृहा, स्वजनबन्धुजनेषु, असहिष्णुता, हि, दुरात्मनाम्, इदं, प्रकृतिसिद्धम् ॥ ५२ ॥

(वाचनमनोरञ्जनी) अकरुणत्वं=सर्वप्राणिषु निर्दयत्वम्, अकारणवि-
ग्रहः=कारणं विनाऽपि सर्वैः सह वैरकारणं, परधने=अन्यस्य द्रव्ये, च=तथा,
परयोषिति=परकीयभार्यायां, स्पृहा=इच्छा, स्वजनबन्धुजनेषु=आत्मीयजनबा-
न्धवजनेषु, असहिष्णुता=असहनशीलता, हि=निश्चयेनेत्यर्थः । दुरात्मनां=

दुर्जनानाम्, इदं=पूर्वोक्तं दोषचतुष्टयं, प्रकृतिसिद्धं=स्वभावसिद्धम् । अत्र 'दुत-
विलम्बितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं 'दुतविलम्बितमाह नभौ भरी' इति ॥५२॥

(समासः) न विद्यते कारणं यस्मिन् सोऽकारणः, स चासौ विग्रहः ।
परस्य धनं परधनं तस्मिन् । परस्य योषित् परयोषित् तस्याम् । स्वजनाः
बन्धुजनान् स्वजनबन्धुजनास्तेषु । न सहिष्णुताऽसहिष्णुता । दुष्ट आत्मा येषां
तेषाम् । प्रकृत्या सिद्धं प्रकृतिसिद्धम् ॥ ५२ ॥

(कोषः) स्त्री योषिदबला योषा नारी सीमन्तिनी बधूः । प्रतीपदर्शिनी
चामा वनिता महिला तथा ॥ संसिद्धि-प्रकृती त्विमे स्वरूपञ्च स्वभावश्च
निसर्गश्च ... ॥ ५२ ॥

(सरलार्थः) सर्वप्राणिषु निर्दयत्वम्, अकारणविग्रहः, परस्य धने
स्त्रियां वा स्पृहा, स्वजनेषु बान्धवजनेषु चाऽसहनशीलता, दुर्जनानामेतत्पूर्वोक्तं
दोषचतुष्टयं स्वभावसिद्धं भवतीत्यर्थः ॥ ५२ ॥

(मनोरमा) सव प्राणियों पर निर्दयी रहना, कारण के बिना भी वैर
करना, दूसरे के धन तथा स्त्री में स्पृहा रखना, अपने आदिमियों पर तथा
बन्धुजनों पर सहनशीलता न रखना, ये चार दोष दुर्जनों के स्वभावसिद्ध हैं ॥

विद्याऽलङ्कृतस्यापि दुर्जनस्य सङ्गो न विधेय इति सर्पदृष्टान्तेन वदति—

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन् ।

मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥ ५३ ॥

(अन्वयः) दुर्जनः, विद्यया, अलङ्कृतः, अपि, सन्, परिहर्तव्यः,
(अस्ति), असौ, सर्पः, मणिना, भूषितः, भयङ्करः, न, किम् ॥ ५३ ॥

(बालमनोरञ्जनी) दुर्जनः=दुरात्मा, विद्यया=वेदव्याकरणादिसकल-
शास्त्रात्मिकया विद्यया, अलङ्कृतः=विभूषितः, अपि, सन्=विद्यमानः, परिह-
र्तव्यः=त्यक्तुं योग्यः, (अस्ति सहवासायोग्य इत्यर्थः । तत्रोदाहरणं दर्श-
यति—आसौ नरः प्रसिद्ध इति यावत् । सरः=भुजंगः मणिना=हीरादिभिः,

विभूषितः=अलङ्कृतः (सन्) भयङ्करः=भीतिजनकः, अत्र भयं करोतीति विप्रहे “भेधर्तिभयेषु कृजः” इति सूत्रेण खच् । ततः “अरुद्विषदजन्तस्य मुम्” इति मुम् । न=न अस्ति, किम् ? अपि तु भयङ्कर एवास्ति । यथा मणिनाऽलङ्कृतोऽपि सर्पो भयङ्करो भवति, तथैव पण्डितोऽपि दुरात्मा भयङ्करः अतस्तस्य सङ्गः कदापि न कर्तव्यः, अपि तु सर्वथा त्याज्य इति भावः । अत्र श्लोके ‘अनुष्टुप्’ नाम वृत्तम् ॥ ५३ ॥

(कोषः) रत्नं मणिद्वयोरदमजातौ मुक्तादिकेऽपि च ॥ ५३ ॥

(सरलार्थः) शिक्षितोऽपि दुरात्मा सर्वथा परित्याज्यः । यतो हीरकादिना समलङ्कृतोऽपि भुजगो भयङ्कर एव भवतीत्यर्थः ॥ ५३ ॥

(मनोरमा) पढ़ा लिखा भी दुर्जन सर्वथा त्याज्य है क्योंकि मणि से विभूषित सर्प भी भयंकर होता है ॥ ५३ ॥

गुणिनां सर्वानपि गुणान् दुर्जना दोषत्वेनैव गणयन्तीति बोधयितुं गुणेषु दोषप्रकारं दर्शयति—

जाड्यं हीमति गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवं

शूरे निर्घृणता ऋजौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि ॥

तेजस्विन्यवलिसता मुखरिता वक्तव्यशक्तिः स्थिरे

तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नाङ्कितः ॥५४॥

(अन्वयः) हीमति, जाड्यं, गण्यते, व्रतरुचौ, दम्भः, शुचौ, कैतवं, शूरे, निर्घृणता, ऋजौ, विमतिता, प्रियालापिनि, दैन्यं, तेजस्विनि, अवलिप्तता, वक्तिरि, मुखरिता, स्थिरे, अशक्तिः, तत्, गुणिनां, कः, नाम, सः, गुणः भवेत्, यः, दुर्जनैः, न, अङ्कितः ॥ ५४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) हीमति=लज्जावति, जाड्यं=मूर्खता, गण्यते=प्रकथ्यते आरोप्यते इति यावत् । (एवमेवोत्तरत्रापि ‘गण्यते’ इत्यस्यान्वयो बोध्यः) व्रतरुचौ=व्रताभिलाषिणि, दम्भः=शाड्यं, शुचौ=शुद्धपुरुषे, सदाचारशील इति यावत् । कैतवं=धूर्तता, शूरे=शौर्यादिगुणयुक्ते, पुरुषे निर्घृणता=

निर्दयत्वन्, ऋजो=सरले, विमतिता=बुद्धिविहीनता, प्रियमालपति तच्छीलस्त-
स्मिन् प्रियालापिनि=मधुरभाषिणि पुरुषे, दैन्यं=कार्पण्यं, तेजोऽस्त्यस्मिन्
स तेजस्वी तस्मिन् तेजस्विनि=तेजोविशिष्टं, अवलिप्तता=गर्वितता,
वक्त्रि=वचनपटौ, मुखरिता=अव्याहृतवक्तृता, वाचालतेति यावत् । स्थिरे=
स्थिरपुरुषे, अशक्तिः=असामर्थ्यं, तत्=तस्मात्, गुणिनां=गुणज्ञानां, कः=
क्रीडशः, नाम, सः, गुणः=शौर्यादिगुणः, भवेत्=स्यात्, यः=यो गुणः, दुर्जनैः=
दुष्टपुरुषैः, न, अङ्कितः=कलङ्कितः, अर्थात् सर्वेऽपि गुणा दोषारोपणेन निन्दिता
एव दुर्जनैरित्यर्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ५४ ॥

(समासः) हीरस्त्यस्मिन्निति हीमान् तस्मिन् । व्रते रुचिर्यस्य स व्रतर-
चिस्तस्मिन् । न विद्यते शक्तिर्यस्मिन् सोऽशक्तिः । दुष्टाश्च ते जना दुर्जनास्तैः ॥ ५४ ॥

(कोषः) कपटोऽस्त्री व्याज-दम्भोपधयश्छद्म-कैतवे । कुसृतिर्निवृत्तिः
शाठ्यम् । ऋजावजिह्वाप्रगुणौ । “अवलिप्तस्तु गर्वं स्याल्लेपने भूषणोऽपि च”
इति मेदिनी । दुर्मुखे मुखरावद्धमुखौ ॥ ५४ ॥

(सरलार्थः) दुर्जनपुरुषा लज्जावति पुरुषे जाड्यं, व्रताचरणशीले
शाठ्यं, शुद्धपुरुषे धूर्ततां, शूरपुरुषे निर्दयतां, सरलस्वभावे पुरुषे बुद्धिविहीनतां,
मञ्जुभाषिणि पुरुषे कार्पण्यं, तेजोविशिष्टे नरि गर्विततां, वक्त्रि वाचालतां,
वीरपुरुषेऽसामर्थ्यं परिगणयन्ति, तस्मात्को नामैतादृशो गुणोऽस्ति यस्तैर्दुर्जनैर्न
दोषारोपणेन निन्दितोऽस्तीत्यर्थः ॥ ५४ ॥

(मनोरमा) दुर्जनं लोग लज्जा रखने वाले पर जड़ता, व्रत रहने वाले पर
ढोंगपना, पवित्र पुरुष पर धूर्तता, शूर पुरुष पर घमण्डीपना, बोलने में चतुर
पुरुष पर वाचालता तथा स्थिर पुरुष पर सामर्थ्यहीनता का दोष लगाते हैं, तो
भला गुणवानों का ऐसा कौन गुण है जिसमें वे लोग ऐव न लगाते हों । ॥ ५४ ॥

हेयोपादेयतया दोषान् गुणांश्च प्रदर्शयति—

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः

सौजन्यं यदि किं निजैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः

सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना ॥५५॥

(अन्वयः) लोभः, चेत्, अगुणेन, किम्, यदि, पिशुनता, अस्ति, पातकैः, किं, सत्यं, चेत्, तपसा, च, किं, यदि, मनः, शुचि, अस्ति, तीर्थेन, किं, यदि, सौजन्यम्, (अस्ति), निजैः, किं, यदि, सुमहिमा, अस्ति, मण्डनैः, किं, यदि, सद्विद्या, (अस्ति), धनैः, किं, यदि, अपयशः, अस्ति, मृत्युना, किम् ॥ ५५ ॥

(बालमनोरञ्जनी) लोभः=तृष्णा, चेत्=स्यात्, अगुणेन=गुणाभावेन, किं=किं प्रयोजनम्, एकस्मिन् लोभे सति सर्वगुणानां दैयर्थात्मिकमपि नेत्यर्थः । यदि पिशुनता=दुर्जनता, द्विजिह्वतेत्यर्थः । अस्ति=वर्तते, (तर्हि) पातकैः=पापैः किं=किं फलं; पिशुनतयैवानेकपापोत्पत्तिसत्त्वात्मिकमपि फलं नास्तीत्यर्थः । सत्यं=तथ्यं, यथार्थभाषणमिति यावत् । चेत्=स्यात् (तर्हि) तपसा=कृच्छ्रचान्द्रायणादिना, किं प्रयोजनं, सत्येनैव कृच्छ्रादिफलप्राप्तिरिति भावः । यदि, मनः=अन्तःकरणं, शुचि=पवित्रम्, अस्ति=विद्यते, (तर्हि) तीर्थेन=अयोध्यामथुरादि*सप्ततीर्थस्नानादिना, किं=किं प्रयोजनं, मनः शुद्धयैव सकलतीर्थस्नानादिफलप्राप्तेर्न किमपि फलमित्यर्थः । यदि सौजन्यं=सुजनता (अस्ति तर्हि) निजैः=आत्मीयैः, स्वगोत्रीयैरिति यावत् । किं=किं प्रयोजनं, सुजनतयैव सर्वेषामात्मीयत्वसम्पादनाय किमपि फलमित्यर्थः । यदि, सुमहिमा=सुमाहात्म्यम्, अस्ति=विद्यते (तर्हि) मण्डनैः=भूषणैः, किं=किं फलं, माहात्म्यस्यैव सर्वभूषणत्वात्मिकमपि फलं नास्तीत्यर्थः । यदि सद्विद्या=वेदव्याकरणादिसकलशास्त्राणां सम्यग्ज्ञानम्, (अस्ति-तर्हि) धनैः=विभवैः, किं=किं फलं, विद्याधनस्यैव सर्वधनेषु प्राधा-

* सप्ततीर्थाः के इत्याह—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका ।

पुरी द्वारावती चैव सप्तैते मोक्षदायकाः ॥ एते=तीर्थाः इत्यर्थः ॥

न्याञ्च किमपीत्यर्थः । यदि, अपयशः=अपकीर्तिः, अस्ति=विद्यते, (तर्हि) मृत्युना=निधनेन, प्राणनाशेनेति यावत् । किं=किं प्रयोजनं, अपयशसैव मृत्युसत्त्वाच्च किमपि प्रयोजनमित्यर्थः । अत्र श्लोके पूर्वोक्तं वृत्तम् ॥ ५५ ॥

(समासः) न गुणोऽगुणस्तेन । सुष्ठु महिमा सुमहिमा । सती चासौ विद्या सद्विद्या ॥ ५५ ॥

(कोषः) पिशुनो दुर्जनः खलः । सत्यं तथ्यमृतं सम्यक् । तपः कृच्छ्रादिकर्म च । स्वान्तं हन्मानसं मनः । स्यात्पञ्चता कालधर्मो दिष्टान्तः प्रलयोऽत्ययः । अन्तो नाशो द्वयोर्मृत्युर्मरणं निधनोऽस्त्रियाम् ॥ ५५ ॥

(सरलार्थः) सति लोभे गुणाभावेन किं, यदि पिशुनताऽस्ति तर्हि ब्रह्महत्यादिपातकैः किं, सत्यभाषणमस्ति चेत्तपसा च किं, यवन्तःकरणं पवित्रमस्ति तर्हि तीर्थेषु गत्वा स्नानादिकरणेन किं, यदि सुजनताऽस्ति तर्हि स्वजनैः किं, यदि माहात्म्यमस्ति तर्हातिरभूषणैः किं, यदि पार्श्वे सद्विद्याऽस्ति धनैः किं, यदि लोकेऽपकीर्तिरस्ति तर्हि मरणेन किं, तत्तत्कार्यं तेन तेनैव भवतीति न प्रयोजनमित्यर्थः ॥ ५५ ॥

(मनोरमा) यदि लोभ है तो गुण न रहने से क्या ! यदि चुगुली-पन है तो ब्रह्महत्या आदि पातकों का क्या काम है । यदि सत्य बोलना है तो तपस्या करने न करने से क्या ! यदि अन्तःकरण शुद्ध है तो अयोध्या मथुरा काशी आदि तीर्थों में जाकर स्नान वगैरह करने से ही क्या ! यदि सुजनता (इन्सानियत) है तो अपने लोगों से ही क्या ! यदि अपने में बड़प्पन है तो ऊपरी भूषणों ही से क्या लाभ ! यदि अपने पास अच्छी विद्या है तो धन का क्या काम ? यदि देश में अपकीर्ति है तो मौतका क्या काम ! ॥ ५५ ॥

परिहर्तुं मशक्यानि सप्त मानसिकानि दुःखानीह दर्शयति—

शशी दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी

सुरो विगतवारिजं सुखमनभरं स्वाकृतेः ।

प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो

नृपाङ्गनगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ॥५६॥

(अन्वयः) शशी, दिवसधूसरः, कामिनी, गलितयौवना, सरः, विगतवारिजं, स्वाकृतेः, मुखम्, अनक्षरं, प्रभुः, धनपरायणः, सज्जनः, सतत-दुर्गतः, खलः, नृपाङ्गनगतः, (एतानि) सप्त, शल्यानि, मे, मनसि, (वर्तन्ते) ॥

(बालमनोरञ्जनी) शशी=चन्द्रः, दिवसधूसरः=अहिप्रभाविहीनः, कामिनी=स्त्री, गलितयौवना=नष्टयौवना, सरः=सरोवरं, विगतवारिजं=विगत-कमलं, स्वाकृतेः=सुन्दरकरचरणायवयवस्य, मुखम्=आननं, अनक्षरम्=अक्षर-रहितं, प्रभुः=स्वामी, धनपरायणः=विभवतत्परः, सज्जनः=साधुजनः, सतत-दुर्गतः=निरन्तरं दारिद्र्यं प्राप्तः, खलः=दुर्जनः, नृपाङ्गनगतः=राजचत्वरप्रान्तगतः, (एतानि) सप्त=सप्तसंख्याकानि, शल्यानि=शङ्कुवः, मे=मम, मनसि=अन्तः-करणे, वर्तन्ते इति शेषः । अत्र श्लोके 'पृथिवी' नाम वृत्तम् ॥५६॥

(समासः) दिवसे धूसरो दिवसधूसरः । गलितं यौवनं यस्याः सा । विगतं वारिजं यस्मात्तत् । शोभनाऽऽकृतिर्यस्य सः स्वाकृतिस्तस्य । न विद्य-न्तेऽक्षराणि यस्मिंस्तत् । धने परायणो धनपरायणः । सन् चासौ जनः सज्जनः । सततं दुर्गतः सततदुर्गतः । नृपस्याऽङ्गने गतो नृपाङ्गनगतः ॥५६॥

(कोषः) ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः । कासारः सरसी सरः । अङ्गनं चत्वरजिरे । वा पुंसि शल्यं शङ्कुर्वा ॥ ५६ ॥

(संरत्नार्थः) दिवसि प्रभारहितश्चन्द्रः, नष्टयौवना स्त्री, कमलरहितं सरः, सुन्दरसकलावयवस्य जनस्य वर्णहीनं मुखं, धनतत्परः स्वामी, निरन्तरदारिद्र्यगतः सज्जनः, राजभवनप्राङ्गणगतो दुर्जनः, एतानि मम मानसिकानि सप्त शल्यानि सन्तीत्यर्थः ॥ ५६ ॥

(मनोरमा) दिन में प्रभारहित चन्द्र, ढली हुई जवानी वाली स्त्री,

कमलहीन सरोवर, सुन्दर शरीर वाला निरक्षर स्वामी, धनलोभ प्रिय स्वामी,

नित्य दरिद्रता से अस्त सज्जन, और राजभवन के आङ्गन में गया हुआ दुर्जन—ये सातों मेरे मानसिक काँटे हैं ॥ ५६ ॥

अत्यन्तकोपाविष्टानां भूपतीनामात्मीयः कोऽपि नास्तीत्यग्निदृष्टान्तेन वदति —

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।

होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ॥ ५७ ॥

(अन्वयः) चण्डकोपानां, भूभुजाम्, आत्मीयः, कश्चित्, (अपि), न, (अस्ति), नाम, जुह्वानं, होतारम्, अपि, (तेन) स्पृष्टः, पावकः, दहति (एव) ॥ ५७ ॥

(बालमनोरञ्जनी) चण्डकोपानाम्=अत्यन्तकोपानां, भुवं भुञ्जन्तीति भूभुजस्तेषां भूभुजां=राज्ञाम्, आत्मीयः=स्वकीयः, कश्चित्, अपि, न=न(अस्ति) नाम='नाम' इति प्रसिद्धौ । तत्रोदाहरणम्—जुह्वानं=हविषो दातारं=हवन-कर्तारम्, ऋग्वेदिनमिति यावत् । अपि, (तेन) स्पृष्टः=कृतस्पर्शः, पावकः=अग्निः, दहति=सन्तापयति (एव) न तमुपेक्षत इत्यर्थः । एवं रीत्या राजानोऽपि सन्तीति भावः । अत्र 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ ५७ ॥

(समासः) चण्डः कोपो येषां ते चण्डकोपास्तेषां चण्डकोपानाम् ॥ ५७ ॥

(कोपः) चण्डस्त्वत्यन्तकोपनः । कोप-क्रोधाऽऽमर्ष-रोष-प्रतिघातृकुक्षौ क्षिप्तौ । अध्वर्यूद्गातृहोतारो यजुःसामग्विदः क्रमात् । अग्निवैश्वानरो वह्निर्वीतिहोत्रा धनञ्जयः । कृपीटयोनिर्ज्वलनो जातवेदास्तनूनपात् ॥ वह्निः शुष्मा कृष्णवर्त्मा शोचिष्केश उषर्बुधः । आश्रयाशो बृहद्भानुः कृशानुः पावकोऽनलः इत्यादि ॥ ५७ ॥

(सरलार्थः) अत्यन्तकोपाविष्टानां राज्ञां स्वकीयः कश्चिदपि नास्ति । यथाऽग्निजुह्वानं होतारमपि सन्तापयत्येव, तथैव राजानोऽपि सन्तापयन्त्येवेत्यर्थः ॥ ५७ ॥

(मनोरमा) जो राजा अत्यन्त क्रोधी है, उनका कोई भी अपना नहीं

है, जैसे घी की आहुति देनेवाले होता को भी आग जलाए बिना नहीं रहती उसी प्रकार राजा भी किसी को दुःख दिये बिना नहीं रहते ॥ ५७ ॥

अतिविपमः सेवाधर्मोऽस्तीत्याह—

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा

धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाप्रगल्भः ।

क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः

सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामगम्यः ॥ ५८ ॥

(अन्वयः) सेवाधर्मः, परमगहनः, (अस्ति) (यतः) योगिनाम्, अपि, अगम्यः, मौनात्, मूकः, प्रवचनपटुः, (चेत्) वातुलः, वा, जल्पकः, पार्श्वे, वसति, (चेत्), धृष्टः, दूरतः (वसतीति पूर्वतो बोध्यम्) (चेत्) अप्रगल्भः, क्षान्त्या (युक्तश्चेत्), भीरुः, यदि, न सहते, (तदा) प्रायशः, अभिजातः, न ॥ ५८ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सेवाधर्मः=शुश्रूषाकरणं, परमगहनः=अतिदुर-
धिगमः, (यतः) योगिनां=योगनिष्ठानाम्, अपि, अगम्यः=ज्ञातुमशक्यः ।
तमेव वदति—मौनात्=मौनव्रतकरणात्, मूकः=अवाक् (अस्तीत्युच्यते इति
शेषः—एवमग्रेऽपि बोध्यम्) मौनव्रतधारिणं पुरुषं मूकत्वेन जना गणयन्ती-
त्यर्थः । प्रवचनपटुः=प्रवचनचतुरः (चेत्) वातं न सहत इति वातुलः=वात-
रोगी, 'वात-सुखसेवनयोः' इत्यदन्तः । ततो "बाहुलकादुलच्" इति रामाश्र-
मीकारः । वा=अथवा, जल्पकः=वाचालः, वागिमनं जनं वाचालत्वेन वातारोगि-
त्वेन वा जना गणयन्तीत्यर्थः । पार्श्वे=पार्श्वभागे, वसति=तिष्ठति, (चेत्)
धृष्टः=विनयरहितः—लज्जारहितो वा अमरकोशेऽधृष्टशब्देन सलज्जस्य ग्रहणा-
दर्थाद्धृष्टशब्देन निर्लज्जस्य ग्रहणं भवति । सदा पार्श्वे वसन्तं पुरुषं धृष्टत्वेन
गणयन्तीत्यर्थः । च=तथा, दूरतः=दूरदेशे, (वसतीत्यस्य पूर्वतोऽन्वयः) तदा=
तर्हि, अप्रगल्भः=अप्रौढः, दूरे वसन्तं पुरुषमप्रौढत्वेन जना गणयन्तीत्यर्थः ।

क्षान्त्या=धमया (युक्तश्चेत्) भीरुः=भीतिमान्, क्षमाशीलं पुरुषं भीरुत्वेन

गणयन्तीत्यर्थः । यदि, न, सहते=श्रमते, (तदा) प्रायशः=बाहुल्येन, न, अभिजातः=अज्ञः—अकुलीनो वा, असहनशीलं पुरुषं सर्वदाऽज्ञत्वेनाकुलीनत्वेन वा जना गणयन्तीत्यर्थः । अत्र श्लाके 'मन्दाक्रान्ता' नाम वृत्तम् । तल्लक्षण-
न्वित्थम्—'मन्दाक्रान्ता' जलधिषड्गैर्भौं नतौ तादृगुरु चेत् । इति ॥५८॥

(समासः) प्रवचने पटुः प्रवचनपटुः । न प्रगल्भोऽप्रगल्भः । परमं गहनः परमगहनः । न गम्योऽगम्यः ॥ ५८ ॥

(कोषः) अवाचि मूकः । दक्षे तु चतुरपेशलपटवः सूत्रान् उष्णश्च । वातूलो वातुलोऽपि स्यात् । "वातुलो वातलेऽपि स्यात्" इति हेमचन्द्रः । स्याज्जल्पकस्तु वाचालो वाचाटो बहुगर्हवाक् । धृष्टे धृष्णुर्विघातश्च । स्यादधृष्टे तु शालीनः । अभिजातस्तु कुलजे बुधे ॥ ५८ ॥

(सरलार्थः) यदि सेवको मौनमवलम्ब्य तिष्ठति तर्हि तं जना मूक-
त्वेन गणयन्ति, यदि वाक्पटुरस्ति चेद्वाचालत्वेन वातरोगित्वेन वा तं जना
गणयन्ति, यदि पार्श्वे वसति चेत्तर्ह्यविनीतत्वेन निर्लज्जत्वेन वा गणयन्ति,
यदि दूरे वसति तर्ह्यप्रौढत्वेन गणयन्ति, यदि क्षमाशीलोऽस्ति तर्हि भीरुत्वेन
गणयन्ति, यदि न सहते तर्हि मूर्खत्वेनाऽकुलीनत्वेन वा गणयन्ति, अतः सेवा
धर्मोऽत्यन्तदुरधिगमोऽस्ति यतो योगिनामप्यगम्योऽस्तीत्यर्थः ॥ ५८ ॥

(मनोरमा) सेवक यदि चुप रहता है तो लोग उसे गूँगा कहते हैं ।
यदि बोलने में चतुर रहता है तो लोग उसे बकवादी तथा 'इसको वात रोग
हुआ है', ऐसा कहते हैं । यदि पास में बैठता है तो ढीठ (अशिक्षित)
तथा निर्लज्ज कहलाता है और यदि दूर रहा तो मूर्ख । यदि बातें सहता
है तो उसे डरपोक और नहीं सहता है तो मूर्ख तथा अकुलीन कहते हैं ।
इस लिए सेवा धर्म बहुत क्लिष्ट है जो योगियों तक को मालूम नहीं है ॥५८॥

नीचसेवाकारिणः कदापि सुखिनो न भवन्तीत्याह—

उन्नासिताखिलखलस्य विशृङ्खलस्य

प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।

दैवादवाप्तविभवस्य गुणद्विषोऽस्य

नीचस्य गोचरगतैः सुखमाप्यते कैः ॥ ५९ ॥

(अन्वयः) उद्भासिताखिलखलस्य, विशृङ्खलस्य, प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः, दैवात्, अवाप्तविभवस्य, गुणद्विषः, अस्य, नीचस्य, गोचरगतैः, कैः, सुखम्, आप्यते ॥ ५९ ॥

(वालमनोरञ्जनी) उद्भासिताखिलखलस्य=प्रकाशितनिखिलदुर्जनस्य, विशृङ्खलस्य=प्रतिबन्धरहितस्य, प्राग्जातविस्तृतनिजाधमकर्मवृत्तेः=पूर्वजन्मोत्पन्नस्वकीयनीचकर्मवर्तनस्य, दैवाद=अदृष्टवशात्, अवाप्तविभवस्य=सम्प्राप्तैश्वर्यस्य, गुणद्विषः=गुणशत्रोः, अस्य=अमुष्य, नीचस्य=गर्हितस्य जनस्य, गोचरगतैः=चक्षुर्विषयीभूतैः, कैः=कैः पुरुषैः, सुखं=भोगः, आप्यते=लभ्यते, कैरपि नेत्यर्थः । अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् ॥ ५९ ॥

(समासः) उद्भासिता अखिलाः खला येन स उद्भासिताखिलखलस्तस्य । विनष्टा शृङ्खला यस्यासौ तस्य । प्राग्जातमिदानीं विस्तृतं निजमधमं यत् कर्म, तस्मिन्वृत्तिर्यस्य तस्य । अवाप्तो विभवो येन सोऽवाप्तविभवस्तस्य । गोचरं गता गोचरगतास्तैर्गोचरगतैः ॥ ५९ ॥

(कोषः) दैवं दिष्टं भागधेयं भाग्यं स्त्री नियतिर्विधिः । विवर्णः पामरो नीचः प्राकृतश्च पृथग्जनः । निहीनोऽपसदो जात्मः क्षुल्लकश्चेतरश्च सः ॥ ५९ ॥

(सरलार्थः) यः सर्वेषां खलानां प्रकाशकः, प्रतिबन्धरहितः, पूर्वजन्मोत्पन्ने स्वकीये निन्द्यकर्मणि वृत्तिं करोति, स यदि भाग्यवशादैश्वर्यं प्राप्तवान् तर्हि तस्य गुणद्विषो नीचस्य पुरुषस्य चक्षुर्विषयीभूतैः कैरपि जनैः सुखं न प्राप्यत इत्यर्थः ॥ ५९ ॥

(मनोरमा) जो सब खलों को उभाड़ने वाला है तथा उच्छृङ्खल है, और जो अपने पूर्व जन्म के निन्द्य कर्मों में आसक्ति रखता है, दैवयोग से धन पा जाने वाले गुणद्वेषी नराधम के पास रह कर कोई भी सुख नहीं पा सकता है ॥ ५९ ॥

खलसज्जनयोर्मैत्री दिनपूर्वार्धपरार्धविभागसम्बन्धिच्छायेव सङ्कोचविकासशालिन्यस्तीति प्रदर्शयति—

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण

लघ्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।

दिनस्य पूर्वार्धपरार्धमिन्ना

छायेव मैत्री खलसज्जनानाम् ॥ ६० ॥

(अन्वयः) आरम्भगुर्वी, क्रमेण, क्षयिणी, पुरा, लघ्वी, च पश्चात्, वृद्धिमती, दिनस्य पूर्वार्धपरार्धमिन्ना, छाया, इव, खलसज्जनानां, मैत्री, (भवति) ।

(बालमनोरञ्जनी) आरम्भगुर्वी=प्रारम्भमहती, क्रमेण=सोपानपरम्परया, क्षयिणी=प्रतिक्षणं क्षयशीला, पुरा=पूर्व, लघ्वी=तनुः, च=तथा, पश्चात्=अनन्तरं, वृद्धिमती=वर्द्धनशीला, दिनस्य=दिवसस्य, पूर्वार्धपरार्धमिन्ना, छाया=प्रतिकृतिः, प्रतिविम्ब इति यावत् । इव, खलसज्जनानां=साधु-दुर्जनानां, मैत्री=मित्रता, भवतीति शेषः । यथा दिनस्य पूर्वार्धे आरम्भे छाया महती तथा क्रमेण दिनवृद्ध्या क्षयशीला भवति तथैव रीत्या दुर्जनानां मैत्री प्रारम्भे महती पश्चाल्लघ्वी भवतीत्यर्थः । यथा दिनस्य परार्धे प्रारम्भे लघ्वी छाया, पश्चाद्दिनक्षये वृद्धिमती भवति, तथैव रीत्या सज्जनानां मित्रताऽऽदौ लघ्वी परिणामे महती भवतीति भावः । अत्र श्लोके 'उपजाति' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ६० ॥

(समासः) आरम्भे गुर्वी आरम्भगुर्वी । पूर्वार्धश्च परार्धश्च पूर्वार्धपरार्धे साम्यां मिन्ना पूर्वार्धपरार्धमिन्ना । खलाश्च सज्जनाश्च खलसज्जनास्तेवाम् ॥ ६० ॥

(कोषः) घटे दिनाहनी वा तु क्लीवे दिवसवासरी । छाया सूर्यप्रियाः कान्तिः प्रतिविम्बमनातपः ॥ ६० ॥

(सरलार्थः) दिनस्य पूर्वार्धपरार्धमिन्ना छायेव प्रारम्भे गुर्वी पश्चात्परिणामे लघ्वी दुर्जनानां मैत्री भवति, तथा सज्जनानां प्रारम्भे लघ्वी, तत्पश्चात्-महती मैत्री भवतीत्यर्थः ॥ ६० ॥

(मनोरमा) दिन के शुरू में जैसे छाया बड़ी और बाद में छोटी होती है, उसी प्रकार दुर्जनों की मैत्री पहले बढ़कर होती है, बाद घट जाती है। इसी तरह जैसे दिन के दोपहर के बाद में छाया बड़ी और फिर छोटी होती है, उसी प्रकार सज्जनों की मैत्री पहलेपहल साधारण सी होती है बाद क्रमशः बढ़ जाती है ॥ ६० ॥

पिशुनाः कारणं विनैव जगति वैरिणो भवन्तीति लुब्धकधीवरदृष्टान्तेन वदति—

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनाम् ।

लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥ ६१ ॥

(अन्वयः) जगति, लुब्धकधीवरपिशुनाः, निष्कारणवैरिणः, (भवन्ति) तृणजलसन्तोषविहितवृत्तीनां, मृगमीनसज्जनानाम् ॥ ६१ ॥

(बालमनोरञ्जनी) जगति=लोके, लुब्धकधीवरपिशुना=व्याधकैवर्त-दुर्जनाः, निष्कारणवैरिणः=अकारणशत्रवः, भवन्तीति शेषः । केषामेते वैरिणो भवन्तीत्यत आह—मृगमीनसज्जनानामिति । तृणजलसन्तोषविहित-वृत्तीनां=तृणजलसन्तोषसंरक्षितजिविकानां, मृग-मीन-सज्जनानां=हरिण मत्स्य-सत्पुरुषाणाम् । अत्र लुब्धकधीवरौ दृष्टान्तौ पिशुनश्च दार्ष्टान्तिकः । यथा लुब्धकधीवरौ मृगमीनयोर्निष्कारणं वैरिणौ भवतः, तथैव पिशुनः सज्जनानाम-कारणवैरो भवतीति भावार्थः । अत्र श्लोके 'आर्या' नाम वृत्तम् ॥ ६१ ॥

(समासः) लुब्धकश्च धीवरश्च पिशुनश्च लुब्धकधीवरपिशुनाः । तृणञ्च जलञ्च सन्तोषश्च तृणजलसन्तोषास्तैर्विहिता वृत्तिर्येषां तेषाम् । मृगाश्च मीनाश्च सज्जनाश्च मृगमीनसज्जनास्तेषाम् ॥ ६१ ॥

(कोषः) व्याधो मृगवधाजीवो मृगयुर्लुब्धकश्च सः । कैवर्तौ दाशधी-वरौ । आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि सलिलं कमलं जलम् । वृत्तिर्वर्तनजीवने । मृगे कुक्कु-वातायुर्हरिणः।जिनयोनयः । पृथुरोमा भूषो मत्स्यो मीनो वैसारिणो-ण्डजः । विसारः शकुली च ॥ ६१ ॥

(सरलार्थः) तृणजलसन्तोषैर्जाविकां कुर्वतां मृगमत्स्यसज्जनानां व्याधधीवरदुर्जनाः कारणां विनैव वैरिणो भवन्तीत्यर्थः ॥ ६१ ॥

(मनोरमा) बहेलिया, मल्लाह तथा दुर्जन ये तीनों क्रमशः तृण, जल और सन्तोष से अपनी जीविका चलाते हुए मृग, मछली और सज्जन इन तीनों के अकारण शत्रु बन जाते हैं ॥ ६१ ॥

सज्जनसङ्गमादौ वाञ्छादिगुणयुक्ता नरः पूज्यतमा भवन्तीति दर्शयन्वदति—

वाञ्छा सजनसङ्गमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता

विद्यायां व्यसनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादान्मयम् ।

भक्तिः शूलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले

येष्वेते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥ ६२ ॥

(अन्वयः) सजनसङ्गमे, वाञ्छा, परगुणे, प्रीतिः, गुरौ, नम्रता, विद्यायां, व्यसनं, स्वयोषिति, रतिः, लोकापवादात्, भयं, शूलिनि, भक्तिः, आत्मदमने, शक्तिः, खले, संसर्गमुक्तिः, एते, निर्मलगुणाः, येषु, निवसन्ति, तेभ्यः, नरेभ्यः, नमः (अस्तु) ॥ ६२ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सजनसङ्गमे=साधुजनसहवासे, वाञ्छा=इच्छा, परगुणे=अन्येषां गुणे, प्रीतिः=अनुरागः, गुरौ=पित्रादौ, नम्रता=विनयः, विद्यायां=वेदाद्यखिलशास्त्रात्मिकायां विद्यायां, व्यसनम्=आसक्ति, स्वयोषिति=स्वभार्यायां, रतिः=अनुरागः, लोकापवादात्=लोकनिन्दायाः, भयं=भीतिः, शूलिनि=शिवे, 'भक्तिः=परानुरक्तिरश्वरे' इति शाण्डिल्यसूत्रात् । आत्मदमने=आत्मानिग्रहे, शक्तिः=सामर्थ्यं, खले=दुर्जने, संसर्गमुक्तिः=सहवासत्यागः, एते=पूर्वोक्ताः, निर्मलगुणाः=दोषरहिता गुणाः, येषु=येषु पुरुषेषु, निवसन्ति=तिष्ठन्ति, तेभ्यः=पूर्वोक्तगुणावशिष्टेभ्यः, नरेभ्यः=मनुष्येभ्यः, नमः=नमस्कारः, अस्त्विति शेषः । अत्र 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ६२ ॥

(समासः) सज्जनानां सङ्गमः सज्जनसङ्गमस्तस्मिन् । परेषां गुणः पर-

गुणस्तस्मिन् । स्वस्य योषित्स्वयोषित् तस्याम् । लोकेऽपवादो लोकापवा-
दस्तस्मात् । आत्मनो दमनमात्मदमनं तस्मिन् । संसर्गान्मुक्तिः । संसर्गमुक्तिः ।
निर्मलाश्च ते गुणा निर्मलगुणाः ॥ ६२ ॥

(कोषः) गुरुर्गोष्पतिपित्राद्याः । “व्यसनं त्वशुभे शक्तौ” इति मेदिनी ।
व्यसनं विपदि धंशे दोषे कामजकोपजे । ‘रतिः स्मरस्त्रियां रागे’ इति हेम-
चन्द्रः । अपवादौ तु निन्दाज्ञे । शिवः शूली महेश्वरः ॥ ६२ ॥

(सरलार्थः) सत्पुरुषसहवासे आकांक्षा, परेषां गुणोऽनुरागः, वृद्धजने
पित्रादौ विनयः, वेदादिसकलशास्त्राध्ययने आसक्तिः, स्वभार्यायां रतिः, लोक-
निन्दाया भयं, शिवे भक्तिः, आत्मदमने सामर्थ्यं, दुर्जने संसर्गपरित्यागः, एते
निर्मलगुणा येषु नरेषु निवसन्ति तेभ्यो नमोऽस्तिवत्यर्थः ॥ ६२ ॥

(मनोरमा) सत्पुरुषों के सङ्ग की चाह, दूसरों के गुण में अनुराग,
अपने से बड़े अर्थात् माता-पिता वगैरह में नम्रता, शास्त्रों के अध्ययन में
आसक्ति, अपनी औरत में प्रेम, लोकनिन्दा से भय, शिव में भक्ति, आत्म-
दमन में सामर्थ्य, दुर्जन के संसर्ग से मुक्ति—ये निर्मल गुण जिनमें रहते हैं
ऐसे उन पुरुषों को नमस्कार है ॥ ६२ ॥

महतां नैसर्गिकान् गुणान्वदति—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा

सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।

यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ

प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥ ६३ ॥

(अन्वयः) विपदि, धैर्यम्, अथ, अभ्युदये, क्षमा, सदसि, वाक्पटुता,
युधि, विक्रमः, यशसि, अभिरुचिः, च, श्रुतौ, व्यसनं, हि, इदं, महात्मनां,
प्रकृतिसिद्धम् ॥ ६३ ॥

(बालमनोरञ्जनी) विपदि=विपत्तौ, धीरस्य भावो धैर्यं=धीरता, अथ=
तथा, अभ्युदये=ऐश्वर्यसम्प्राप्तौ, क्षमा=क्षान्तिः, सदसि=सभायां, वाक्पटुता=

१ वाक्चातुर्यं, युधि=सङ्ग्रामे, विक्रमः=पराक्रमः, यशसि=प्रतीतिः, अभिरुचिः=प्रीतिः, श्रुतौ=वेदादिषु, व्यसनम्=आसक्तिः, हि=निश्चयेनेत्यर्थः । इदं=पूर्वोक्तं सर्वं, महात्मनां=महतां, प्रकृतिसिद्धं=स्वभावसिद्धं, न त्वन्यतः शिक्षितमित्यर्थः । अत्र श्लोके 'द्वुतविलम्बितं' नाम वृत्तम् । तत्त्वक्षणं—'द्वुतविलम्बितमाह नभौ भरौ' इति ॥६३॥

(समासः) बाष्प पटुता वाक्पटुता । प्रकृत्या सिद्धम् ॥६३॥

(कोषः) विपत्तौ विपदापदौ । क्षितिक्षान्त्योः क्षमा । यशः कीर्तिः समज्ञा च ॥६३॥

(सरलार्थः) विपत्तौ धैर्यं, अभ्युदये क्षमा, सभायां वाक्चातुर्यं, सङ्ग्रामे पराक्रमः, यशसि प्रीतिः, वेदादिशास्त्रेष्व्वासक्तिः, इतीदं पूर्वोक्तं सर्वं महतां स्वभावसिद्धमेवास्तीत्यर्थः ॥६३॥

(मनोरमा) विपत्ति में धैर्य रखना, ऐश्वर्य पाने पर क्षमा रखना, सभा-स्थल पर बोलने में चतुरता, संग्राम में पराक्रम दिखाना, यश में तथा वेदादि-शास्त्रों में प्रीति रखना, ये सब महात्माओं के स्वभावसिद्ध गुण हैं ॥६३॥

सतां महत्त्वमेव प्रकारान्तरेण प्रकटयति—

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः

प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं नाप्युपकृतेः ।

अनुत्सेको लक्ष्म्या अनिरभिभवसाराः परकथाः

सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

(अन्वयः) प्रदानं, प्रच्छन्नं, गृहम्, उपगते, (सति) सम्भ्रमविधिः, प्रियं, कृत्वा, मौनं, उपकृतेः, अपि, सदसि, न, कथनं, लक्ष्म्याः, अनुत्सेकः, परकथाः, निरभिभवसाराः, इदं, सतां, विषमम्, असिधाराव्रतं, केन, उद्दिष्टम् ॥

(बालमनोरञ्जनी) प्रदानं=ब्राह्मणादिभ्यो दानं, प्रच्छन्नं=गुप्तं, न प्रसिद्धमित्यर्थः । गृहं=सद्व्य, उपगते=प्राप्ते, (सति) अतिथिविति शेषः ।

सम्भ्रमविधिः=समादरविधानं, प्रियं=हितं, कृत्वा=विधाय, मौनं=तूष्णीमव-
स्थानं, वचसा न प्रकाशयेदित्यर्थः । उपकृतेः=उपकारस्य, अपि, सदसि=
सभायां, न=नो, कथनं=भाषणं, स्वयं कृतोऽप्युपकारः सभायां स्वयं न वक्तव्य
इत्यर्थः । लक्ष्म्याः=सम्पत्तेः, अनुत्सेकः=अगर्वः, सम्पत्तौ सत्यामपि गर्वाभाव
इत्यर्थः । परकथाः=अन्यकथाः, निरभिभवसाराः=अभिभवरहितसारांशाः, इदं
सतां विषममसिधाराव्रतं केनोद्दिष्टमिति । अत्र श्लोके चतुर्थचरणस्य व्याख्यान-
मष्टाविंशतिश्लोके कृतमस्तीति तत्रैव द्रष्टव्यम् । अत्र श्लोके 'शिखरिणी'
नाम वृत्तम् ॥६४॥

(समास) सम्भ्रमस्य विधिः सम्भ्रमविधिः । न उत्सेकोऽनुत्सेकः ।
परेषां कथाः परकथाः । निरभिभवः सारो यासु ताः । असिधारेत्यस्य समा-
सोऽष्टाविंशतिश्लोके लिखितोऽस्ति ॥६४॥

(कोषः) गृहं गेहोदवसितं वैश्व सद्य निकेतनम् । "सम्भ्रमः साध्व-
सेऽपि स्यात्सवेगादरयोरपि" इति मेदिनी ॥६४॥

(सरलायः) ब्राह्मणेभ्यः प्रच्छन्नं दानं, गृहागतानामतिथीनां सत्कार-
करणं, हितं कृत्वा मौनं, स्वयं कृतस्याऽप्युपकारस्य सभायां न कथनं, सम्पत्तौ
सत्यामपि गर्वाभावः, परेषां कथा अभिभवरहितसारांशाः, इदं पूर्वोक्तं सताम-
तिकठिनमसिधाराव्रतं केनोपदिष्टमित्यर्थः ॥६४॥

(म-ोरमा) छिपे रूप से दान देना, घर आए जन का आतिथ्य
सत्कार करना, किसी का हित करने पर भी उसे न कहना, किसी का उपकार
करने पर भी सभा में प्रकट न करना, सम्पत्ति पाने पर भी गर्व न करना,
पराई कथा में उस पराए जन के अपमान का कथन न करना, इस तरह का
विषम तलवार की धार पर चलना सज्जनों को किसने सिखाया ! ॥६४॥

सत्पात्रे दानाथेवं महतां भूषणं नान्यदिति दर्शयति—

करे श्लाघ्यस्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता

मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।

हृदि स्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं

विनाऽप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥६५॥

(अन्वयः) करे, आध्यः, त्यागः, शिरसि, गुरुपादप्रणयिता, मुखे, सत्या, वाणी, भुजयोः, विजयि, अनुलं, वीर्यं, हृदि, स्वच्छा, वृत्तिः, अधिगतैकव्रतफलं, श्रुतम्, इदम्, ऐश्वर्येण, विना, अपि, प्रकृतिमहतां, मण्डनम् ॥६५॥

(बालमनोरञ्जनी) करे=हस्ते, आध्यः=स्तुत्यः, त्यागः=सत्पात्रे दानम्, एतदेव करभूषणम् । शिरसि=मस्तके, गुरुपादप्रणयिता=गुरुचरणनमृता, गुरुचरणयोश्शिरसौ नम्रीकरणमित्यर्थः । मुखे=आनने, सत्या=तथ्या, यथार्था इति यावत्, वाणी=वाक्, भुजयोः=बाह्वाः, विजयि=विजयशीलम्, अनुलम्=अनुपमं, वीर्यं=बलं, हृदि=अन्तःकरणे, स्वच्छा=निर्मला, वृत्तिः=वर्तनम्, अधिगतैकव्रतफलं=प्राप्तमुख्येऽवरचिन्तनरूपनियमफलं, श्रुतं=शास्त्राध्ययनं, शास्त्राध्ययनस्यैव मुख्यफलत्वादिति भावः । इदं=पूर्वोक्तम्, ऐश्वर्येण=विभूत्या, विनाऽपि, प्रकृतिमहतां=स्वभावेन श्रेष्ठानां, मण्डनम्=अलङ्करणं, नाऽन्यदित्यर्थः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् ॥ ६५ ॥

(समासः) गुराः पादौ गुरुपादौ तयोः प्रणयिता । भुगश्च भुजश्च तयोरेकशेषो भुजौ तयोर्भुजयोः । अधिगतमेकं व्रतं तदेव फलं येन तदधिगतैकव्रतफलम् । प्रकृत्या महान्तः प्रकृतिमहान्तस्तेषाम् ॥ ६५ ॥

(कोषः) वक्त्रास्ये वदनं तुण्डमाननं लपनं मुखम् । भुजबाहु प्रवेष्टो दोः स्यात् । वीर्यं बले प्रभावे च । विभूतिभूतिरेश्वर्यम् ॥ ६५ ॥

(सरलार्थः) हस्ते स्तुत्यं सत्पात्रे दानं, गुरुचरणयोननमृता, मुखे यथार्थवचनं, भुजयोजयशीलमनुपमं बलं, अन्तःकरणे निर्मला वृत्तिः, प्राप्तेऽवरचरणरूपनियमफलं शास्त्राध्ययनम्, एतत्सर्वं विभूतिमन्तराऽपि निसर्गेण महतां पुरुषाणामलङ्करणं भवतीति सरलायः ॥ ६५ ॥

(मनोरमा हाथ से दान देना प्रशंसनीय है, गुरु के चरणों पर शिर झुक्ना, मुख से सत्य बोलना, भुजाओं से बलशाली मनुष्य प्रमाण दिखाना,

हृदय से निष्कपट व्यवहार करना, ईश्वर चिन्तनरूपी मुख्य फल की प्राप्ति कराने वाले शास्त्रों का अध्ययन करना, ये सब ऐश्वर्य के बिना भी स्वभावतः बड़े लोगों के अलङ्कार होते हैं ॥ ६५ ॥

सम्पत्तावापत्तौ च महतां कथमन्तःकरणस्थितिरिति वदति—

सम्पत्सु महतां चित्तं भवत्युत्पलकोमलम् ।

आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्कशम् ॥ ६६ ॥

(अन्वयः) महतां, चित्तं, सम्पत्सु, उत्पलकोमलं, भवति, च, आपत्सु, महाशैलशिलासङ्घातकर्कशं (भवति) ॥ ६६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) महतां=सज्जनानां, चित्तं=हृदयं, सम्पत्सु=अभ्युदयेषु, उत्पलकोमलं=कमलवन्मृदु, भवति, च=तथा, आपत्सु=विपत्सु, महाशैलशिलासङ्घातकर्कशं=विशालपर्वतदृष्टस्समूहकठिनं, भवतीति शेषः । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ ६६ ॥

(समासः) उत्पलमिव कोमलम् । महाश्चासौ शैलो महाशैलस्तस्य शिलानां सङ्घातः स इव कर्कशम् ॥ ६६ ॥

(कोपः) स्यादुत्पलं कुवलयम् । वा पुंसि पद्मं नलिनमरविन्दं महोत्पलम् । सहस्रपत्रं कमलं शतपत्रं कुशेशयम् । सुकुमारं तु कोमलं मृदुलं मृदुः । पाषाणप्रस्तरआवोपलाद्मानः शिला दृषत् ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) सज्जनानामन्तःकरणमभ्युदयेषु कमलमिव कोमलं भवति, तदेव चाऽऽपत्कालेषु महाशैलशिलासमूह इव कठिनं भवतीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

(मनोरमा) बड़े लोगों का चित्त उन्नतिकाल में कमल की भाँति कोमल रहता है, पर वही चित्त विपत्ति आने पर बड़े भारी पहाड़ के शिलासमूह के समान कठोर हो जाता है ॥ ६६ ॥

संसर्गादेव गुणवैचित्र्यं भवतीत्युदकोदाहरणेन दर्शयति—

संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामाऽपि न ज्ञायते ।

मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ॥

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते ॥६७॥

(अन्वयः) संतप्तायसि, संस्थितस्य, पयसः, नाम, अपि, न, ज्ञायते, तत्, एव, नलिनीपत्रस्थितं, (सत्) मुक्ताकारतया, राजते, तद्, (एव), स्वात्यां, सागरशुक्तिमध्यपतितं, (सत्) मौक्तिकं, जायते, (एवं) प्रायेण, अधममध्यमोत्तमगुणः, संसर्गतः, जायते ॥६७॥

(बालमनोरञ्जनी) सन्तप्तायसि=प्रतप्तलौहे, संस्थितस्य=पतितस्य, पयसः=जलस्य, नाम, अपि, न, ज्ञायते=बुध्यते, प्रतप्तेऽयसि पतितस्य जलस्य तत्क्षणमेव समूलं नष्टत्वादित्यर्थः । तत्=जलम्, एव, नलिनीपत्रस्थितं=कमलिनीदलस्थोपरि पतितं (सत्), मुक्ताकारतया=मौक्तिकवत्, राजते=शोभते, भासत इति यावत् । तत्=जलम्, एव, स्वात्यां=स्वातीनक्षत्रे, सागरशुक्तिमध्यपतितं=समुद्रशुक्तिकुक्षिपतितं, (सत्) मौक्तिकं=मुक्ता, जायते=भवति, शुक्तिसंसर्गात्तदेव मुक्ता भवतीत्यर्थः । (एवं) प्रायेण=प्रायशः, अधममध्यमोत्तमगुणः=निकृष्टमध्यमवरेण्यगुणः, संसर्गतः=सहवासात्, जायते=भवति । यथा संतप्तायः संसर्गादेकस्यैवोदकस्य परिणामे वैचित्र्यं भवति, तथैवाऽधमादीनां संसर्गाद्गुणवैचित्र्यं भवति । तस्मात्पुरुषैरुत्तमानां संसर्गः कर्तव्यः, नाधममध्यमयोरिति भावः । अत्र श्लोके 'शादूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥६७॥

(समासः) सन्तप्तश्च तदयः सन्तप्तायस्तस्मिन् । मुक्ताया आकारता मुक्ताकारता तया । नलिन्याः पत्रं नलिनीपत्रं तत्र स्थितम् । सागरे या शुक्तिः तस्या मध्ये पतितम् । अधमश्च मध्यमश्च उत्तमश्च अधममध्यमोत्तमाः, त एव गुणोऽधममध्यमोत्तमगुणः ॥६७॥

(कोषः) लोहोऽस्त्री शब्दकं तीक्ष्णं पिण्डं कालायसायसी । अश्मसारः ... । नलिन्यां तु विसिनी पद्मिनीमुखाः । अथ मौक्तिकम्, मुक्ता । निकृष्टप्रतिकृष्टा-
वरेण्याप्यावमाधमाः ॥६७॥

(सरलार्थः) प्रतप्तेऽयसि पतितस्य पयसस्तत्क्षणमेव समूलनष्टत्वा-
ज्जामापि न श्रूयते, तदेव जलं कर्मलन्याः पत्रस्योपरि स्थितं सन्मुक्तेव शोभते,
तदेव स्वातीनक्षत्रे सांगरशुकतौ पतितं सन्मुक्ता भवति, एवं रीत्या प्रायशः
पुरुषाणामधममध्यमोत्तमगुणः सहवासवशाद्भवतीत्यर्थः ॥६७॥

(मनोरमा) जलते हुए लोहे पर पड़ते ही जल का नाम निशाना भी
नहीं रह जाता, वही जल कमलिनी के पत्तों पर पड़कर मोती की भाँति
शोभित होता है, फिर वही स्वाती नक्षत्र में सीपियों में पड़ कर मोती बन-
जाता है । इसी तरह पुरुषों के अधम, मध्यम, उत्तम ये गुण सहवास से
होते हैं ॥६७॥

आचरणवशात्पुत्रादीनां लक्षणं वदति—

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रो

यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् ।

तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं य-

देतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते ॥६८॥

(अन्वयः) यः, सुचरितैः, पितरं, प्रीणयेत्, सः, (एव), पुत्रः, यत्,
भर्तुः, एव, हितम्, इच्छति, तत्, (एव), कलत्रं, यत्, आपदि, सुखे, च,
समक्रियं, तत्, (एव), मित्रम्, एतत्, त्रयं, जगति, पुण्यकृतः, लभन्ते ॥६८॥

(बालमनोरञ्जनी) यः=यो जनः, सुचरितैः=सुन्दराऽऽचरणैः, पितरं=
जनकं, प्रीणयेत्=सन्तोषयेत्, सः=प्रसादयिता (एव) पुत्रः=सुतः, तदति-
रिक्तो नास्तीत्यर्थः । यत्, भर्तुः=पत्युः, एव, हितं=प्रियम्, इच्छति=
वाञ्छति, तत् (एव) कलत्रं=भार्या, नाऽन्यदित्यर्थः । यत्, आपदि=आपत्ति-
काले, सुखे=सुखसमये, च=अपि, समक्रियं=तुल्यक्रियं, तत्, (एव) मित्रं=
सुहृद्, अस्तीति शेषः । एतत्=पूर्वोक्तं, त्रयं=त्रिसङ्ख्याकं, जगति=लोके,
पुण्यकृतः=सुकृतिनः, लभन्ते=प्राप्नुवन्ति, नाऽन्य इत्यर्थः । अत्र श्लोके 'वसन्त-
तिलक' नाम वृत्तम् ॥६८॥

(समासः) सुष्ठु चरितानि सुचरितानि तैः । समा क्रिया यस्य तत् समक्रियम् ॥ ६८ ॥

(कोषः) कलत्रं श्रेणिभार्ययोः । अथ मित्रं सखा सुहृत् । अथो जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत् ॥ ६८ ॥

(सरलार्थः) यः स्वीयैः शोभनाचरणैर्जनकं प्रसादयेत्स एव पुत्रः, यत् पत्युरेव हितं वाञ्छति तदेव कलत्रं, यो विपत्काळे सुखसमये च तुल्यक्रियो भवति स एव सखा, एतत्सर्वं लोके सुकृतिन एव प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ६८ ॥

(मनोरमा) जो अपने सुन्दर चरित्रों से पिता को प्रसन्न करे, वही पुत्र है । जो अपने स्वामी का हित चाहती है, वही स्त्री है । वही मित्र है जो अपने मित्र के सुख दुःख में एक-सा रहता है । ये सब संसार में भाग्यवान् जन को ही मिलते हैं ॥ ६८ ॥

प्रवृत्तिनिवृत्तिमार्गभेदेन मुख्यान्देवादीनेव सुखहेतूनाह—

एको देवः केशवो वा शिवो वा

ह्येकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा ।

एको वासः पत्तने वा वने वा ।

ह्येका भार्या सुन्दरी वा दरी वा ॥ ६९ ॥

(अन्वयः) केशवः, वा, शिवः, वा, एकः, देवः, हि, भूपतिः, वा, यतिः, वा, एकं, मित्रं, पत्तने, वा, वने, वा, एकः, वासः, सुन्दरी, वा, दरी, वा, एका, भार्या ॥ ६९ ॥

(बालमनोरञ्जनी) केशवः=विष्णुः, वा=अथवा, शिवः=शङ्करः, वा=अथवा, एकः=मुख्यः, देवः=प्रभुः, ज्ञेय इति शेषः । एवमुत्तरत्रापि यथासम्भवं बोध्यम् । हिरत्र पादपूर्त्तावस्ति । प्रवृत्तिनिवृत्तिमार्गयोरुभयोरपि सुखजनकत्वादित्यर्थः । भूपतिः=राजा, वा=अथवा, यतिः=सन्यासी, वा=अथवा, एकं=मुख्यं, मित्रं=सुहृत्, नान्यदित्यर्थः । उभयत्रोभयोर्मित्रकार्यकारित्वादिति भावः । पत्तने=नगरे, वा=अथवा, वने=विपिने, वा=अथवा, एकः=मुख्यः, CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वासः=वसतिः, अन्यत्र नेति भावः । प्रवृत्तौ पशने निवृत्तौ वने वासः सुखदायक इति भावः । सुन्दरी=रमणी, वा=अथवा, दरी=पर्वतकन्दरा, वा=अथवा, एका=मुख्या, भार्या=पत्नी, अन्या नेत्यर्थः । प्रवृत्तौ सुन्दरस्त्री निवृत्तौ पर्वत-गुहा च सुखदायिनी भवतीति भावः । अत्र श्लोके 'शालिनी' नाम वृत्तम् । तत्तलक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ६६ ॥

(कोषः) अमरा निर्जरा देवास्त्रिदशा विबुधाः सुराः । विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरथवाः । दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः । शम्भुरीशः पशुपतिः शिवः शक्ती महेश्वरः । ईश्वरः शर्व ईशानः शङ्करश्चन्द्र-शेखरः । पूः स्त्री पुरी-नगर्यौ वा पत्तनं पुटभेदनम् । अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम् । दरी तु कन्दरो वा स्त्री ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) केशवः शिवो वाऽस्त्वेक एव देव उपास्यः, भूपतिर्यति-र्वाऽस्तु तत्रैकमेव मित्रं कुर्यात्, नगरे वने वैकत्रैव वासं कुर्यात्, सुन्दरी पर्वत-कन्दरा वाऽस्तु तत्रैकया सह प्रेम कुर्यादित्यर्थः ॥ ६६ ॥

(मनोरमा) एक ही देवता में मन लगाना चाहिए, चाहे कृष्ण हों चाहे शिव ! एकही मित्र करना चाहिए, चाहे वह राजा हो या सन्यासी ! एकही जगह स्थिर होकर रहना चाहिए, चाहे नगर हो या वन ! अपनी एकही स्त्री से प्रेम करना चाहिए, वह सुन्दरी हो या पहाड़ की भयावनी कन्दरा ! ॥ ६६ ॥

नम्रत्वादिगुणैः साधवो जगति पूज्या भवन्तीत्याह—

नम्रत्वेन्नोन्नमन्तः परगुणकथनैः स्वान्गुणान्ख्यापयन्तः

स्वार्थान्सम्पादयन्तो विततपृथुतरारम्भयन्ताः परार्थे ।

क्षान्त्यैवाऽऽक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्मुखान्दूषयन्तः

सन्तः साश्चर्यचर्या जगति बहुमताः कस्य नाऽभ्यर्चनीयाः ॥७०॥

(अन्वयः) नम्रत्वेन, उन्नमन्तः, (तथा), परगुणकथनैः, स्वान्, गुणान्, ख्यापयन्तः, (सन्तः), स्वार्थान्, सम्पादयन्तः, (तथा) परार्थे,

विततपृथुतरारम्भयत्नाः, (तथा), आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्, दुर्मुखान्, क्षान्त्या, एव, दूषयन्तः, साध्वर्यचर्याः, सन्तः, जगति, बहुमताः, (सन्तः), कस्य, अभ्यर्चनीयाः, न ॥ ७० ॥

(बालमनोरञ्जनी) नमूत्वेन=नमूतया, उन्नमन्तः=उन्नतिं गच्छन्तः, यद्वस्तु नमीभूतं भवति तज्जयति न तून्नतिं गच्छति, परन्तु सन्तस्तु नमूतयोन्नतिं गच्छन्तीतीदमेवाऽऽश्चर्यमिति भावः । एवमेवाग्रेऽप्युक्तम् । (तथा) परगुणकथनैः=परकीयगुणप्रशंसावचनैः, स्वान्=स्वीयान्, गुणान्=दयादाक्षिण्यादीन्, ख्यापयन्तः=प्रकाशयन्तः (सन्तः), स्वार्थान्=स्वकीयाभीप्सितार्थान्, सम्पादयन्तः=साधयन्तः, (तथा) परार्थे=परप्रयोजनसाधने, परोपकारकरणा इति यावत् । विततपृथुतरारम्भयत्नाः=प्रख्यातमहारम्भोपायाः, परार्थे कर्तव्यकृत्येष्वतिशयेन यत्नकारिण इत्यर्थः । (तथा) आक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान्=भर्त्सनरूक्षवर्णवाचालाननान्, दुर्मुखान्=दुष्टान्, क्षान्त्या=क्षमया, एव, दूषयन्तः=निन्दन्तः, (एतादृशाः) साध्वर्यचर्याः=आश्चर्ययुक्ताचर्याः, सन्तः=सज्जनाः, साधव इति यावत् । जगति=लोके, बहुमताः=बहुमान्याः (सन्तः), कस्य=कस्य पुरुषस्य, अभ्यर्चनीयाः=पूज्याः, न=न, भवन्तीति शेषः । अपि तु सर्वेषामपि पूजनीया भवन्तीत्यर्थः । अत्र श्लोके 'स्रग्धरा' नाम वृत्तम् । तत्तल्लक्षणं—'स्रग्धर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्' इति ॥ ७० ॥

(समासः) परेषां गुणाः परगुणास्तेषां कथनैः । स्वस्यार्थाः स्वार्थास्तान् । परेषामर्थः परार्थस्तस्मिन् । आरम्भेषु यत्नः आरम्भयत्नः, पृथुतरश्चासौ आरम्भयत्नश्च पृथुतरारम्भयत्नः, विस्तृतः पृथुतरारम्भयत्नो येषां ते । आक्षेपेण रूक्षाणि च तान्यक्षराणि आक्षेपरूक्षाक्षराण्य तैर्मुखरं मुखं येषां तान् । बहूनां मता बहुमताः ॥ ७० ॥

(कोषः) विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालं पृथुलं महत् । "आक्षेपेण भर्त्सनाकृष्टि" इति मेदिनी । रूक्षस्त्वप्रेम्ण्यचिक्कणे । चर्या त्वीर्यापथे स्थितिः ॥ ७० ॥

(सरलार्थः) ये नमीभूता अप्युन्नतिशीला भवन्ति, ये परकीयगुण-

प्रशंसावचनैः स्वकीयान् गुणान् प्रकटयन्ति, ये परोपकारकरणे प्रख्यातमहारम्भोपायाः सन्तः स्वकीयानर्थान् साधयन्ति, ये चाक्षेपवृक्षाक्षरैर्वाचालमुखान् दुर्जनान् क्षान्त्यैव दूषयन्ति, ते एतादृशा बहुमान्याः साश्चर्यचर्याः सन्तः कस्य पूजनोपा न सन्ति, अपि तु सर्वेषामपि सन्तीत्यर्थः ॥ ७० ॥

(मनोरमा) जो सबसे नम्र रहते हैं पर ऊँचे पद प्राप्त करते और पराये गुण का कथन करते हुए अपना गुण प्रकट करते हैं । जो पराए के हित पर ध्यान रखते हुए भी अपना मतलब निकालते हैं । जो आक्षेप के साथ निकले अक्षरों से वाचाल हुए मुखवाले दुर्जनों का निन्दा करते हैं । ऐसे आश्चर्ययुक्त कार्य करने वाले सन्त-जन किसके आदर के पात्र नहीं हैं ! ॥ ७० ॥

परोपकारिणां स्वभावं वृक्षादिवृष्टान्तेन वर्णयति —

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमे

नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः ।

अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः

स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ॥ ७१ ॥

(अन्वयः) सत्पुरुषाः, समृद्धिभिः, अनुद्धताः, (भवन्ति), परोपकारिणाम्, एषः, स्वभावः, एव, (अस्ति), तरवः, फलोद्गमे, नम्राः, भवन्ति, घनाः, नवाम्बुभिः, भूमिविलम्बिनः, (भवन्ति) ॥ ७१ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सत्पुरुषाः=सज्जनाः, समृद्धिभिः=ऐश्वर्यैः, अनुद्धताः=श्रौद्धत्यरहिताः, (भवन्ति), परानुपकुर्वन्तीति परोपकारिणस्तेषां परोपकारिणां=परहितकारिणाम्, एषः=असौ, स्वभावः=प्रकृतिः, एव, अस्तीति-शेषः । तत्र दृष्टान्तद्वयं प्रदर्शयति—तरवः=वृक्षाः, फलोद्गमे=फलानां प्रादुर्भावे, नम्राः=अधोमुखाः, भवन्ति=जायन्ते, घनाः=मेघाः, नवाम्बुभिः=नूतनजलैः, भूमि विलम्बन्ते इति भूमिविलम्बिनः=भूमिस्थायिनः, भवन्तीति शेषः । यथा फलोद्गमादौ वृक्षादयो नमीभवन्ति, तथैवैश्वर्यप्राप्तावपि सत्पुरुषा नमी-

भवन्तीति भावः । अत्र श्लोके 'वंशस्थ' नाम वृत्तम् । तद्वक्ष्ये—'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ' इति ॥ ७१ ॥

(समासः) सन्तश्च ते पुरुषाः सत्पुरुषाः । न उद्धता अनुद्धताः । फलानामुद्गमः फलोद्गमस्तस्मिन् । यवानि च तान्यम्बूनि तैः ॥ ७१ ॥

(कोषः) वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः । अनोकहः कुटः शालः पलाशी द्रु-द्रुमागमाः । धन-जीमूत-मुदिर-जलसुग्धूमयोनयः ॥ ७१ ॥

(सरलार्थः) यथा फलानामुद्गमे सति वृक्षा नम्रा भवन्ति, घनाश्च नूतनजलेर्भूमिस्थायिनो भवन्ति, तथैव सज्जना ऐश्वर्यैरुद्धता न भवन्ति, परहित-परायणानामेष स्वभाव एवास्तीत्यर्थः ॥ ७१ ॥

(मनोरमा) जैसे फल लगने पर पेड़ नीचे लटक जाते और नवीन जल के भार से मेघ पृथिवी पर लटक जाते हैं उसी प्रकार परोपकारी सज्जन सम्पत्तिमान होने पर भी उद्धत नहीं होते, बल्कि विनम्र हो जाते हैं यह परोपकारी लोगों का स्वभाव ही है ॥ ७१ ॥

श्रोत्रादीनां शास्त्रश्रवणादिमिदं श्रेष्ठत्वमित्युच्यते—

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन

दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन ।

विभाति कायः करुणापराणां

परोपकारैर्न तु चन्दनेन ॥ ७२ ॥

(अन्वयः) श्रोत्रं, श्रुतेन, एव, विभाति, कुण्डलेन, न, (तथा) पाणिः, दानेन, कङ्कणेन, तु, न, (तथा) करुणापराणां, कायः, परोपकारैः, चन्दनेन, तु, न, ॥ ७२ ॥

(बालमनोरञ्जनी) श्रोत्रं=कर्णः, श्रुतेन=शास्त्रश्रवणेन, एव विभाति=शोभते, एवमेव 'विभाति' इत्यस्योत्तरत्राऽप्यन्वयो बोध्यः । कुण्डलेन=कर्णालङ्कारेण, न=न, शोभते, (तथा) पाणिः=हस्तः, दानेन=सत्पात्रेभ्यो धनवि-
सर्जनेन, (विभाति) कङ्कणेन=करभूषणेन तु, न, (तथा) करुणापराणां=

कृपापराणां, कायः=देहः, परोपकारैः=परहितकरणेनेत्यर्थः, (विभाति), चन्द-
नेन=मलयजेन, न=न, (विभाति) । तस्मात्पुरुषैश्शास्त्रश्रवणादिकमवश्यमेव
कर्तव्यमिति भावः । अत्र श्लोके 'उपजाति' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥

(समासः) करुणा एव परा येषां ते करुणापरास्तेषाम् । परेषूपकाराः
परोपकारास्तैः परोपकारैः ॥७२॥

(कोषः) कर्ण-शब्दप्रहौ श्रोत्रं श्रुतिः स्त्री श्रवणं श्रवः । कुण्डलं कर्ण-
वेष्टनम् । कङ्कणं करभूषणम् । गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियाम् ॥

(सरलार्थः) श्रवणं शास्त्रश्रवणेनैव शोभते, कुण्डलेन न शोभते ।
करो दानेनैव शोभते, न करभूषणेन । कृपापराणां जनानां देहः परोपकारकर-
णेनैव विभाति, न मलयजेनेत्यर्थः ॥७२॥

(मनोरमा) शास्त्रों के श्रवण से कान शोभित होता है, कुण्डल पहनने
से नहीं । दान देने से हाथ शोभित होता है, कङ्कण धारण करने से नहीं ।
दयालुओं का शरीर परोपकार करने से शोभित होता है, न कि चन्दन
लगाने से ॥७२॥

सन्मित्रलक्षणं किमित्यत आह—

पापान्निवारयति योजयते हिताय

गुह्यञ्च गूहति गुणान्प्रकटीकरोति ।

आपद्गतञ्च न जहाति ददाति काले

सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ॥७३॥

(अन्वयः) पापात्, निवारयति, हिताय, योजयते, च, गुह्यं, गूहति,
गुणान्, प्रकटीकरोति, आपद्गत, काले, न, जहाति, च, (काले) ददाति,
सन्तः, इदं, सन्मित्रलक्षणं, प्रवदन्ति ॥७३॥

(बालमनोरञ्जनी) पापात्=पापकर्मणः, निवारयति=निवारणं
करोति, हिताय=हिताचरणाय, योजयते=नियोजयते, च=तथा, गुह्यं=
गोपनीयं, गूहति=गोपयति, गुणान्=दयादाक्षिण्यादीन्, प्रकटीकरोति=प्रकाश-

यति, आपद्गतं=विपद्गतं,=काले=समये, न, जहाति=त्यजति । च=तथा,
(काले=द्रव्यादिदानसमये) ददाति=धनादिकमपि विसृजति, सन्तः=साधवः,
इदं=पूर्वोक्तं, सन्मित्रलक्षणं=सत्सुहृच्चिह्नं, प्रवदन्ति=कथयन्ति । अत्र श्लोके
'वसन्ततिलका' नाम वृक्षम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ७३ ॥

(समासः) आपदि गत आपद्गतस्तम् । सच्च तन्मित्रं सन्मित्रं तस्य
लक्षणं सन्मित्रलक्षणम् ॥ ७३ ॥

(कोषः) अस्त्री पङ्क्तं पुमान् पाप्मा पापं किल्बिष-कल्मषम् । कलुषः
वृजनैर्नोऽधमंहोदुरितदुष्कृतम् । रहस्योपस्थयोगुह्यम् । कलङ्काङ्कौ लाण्डनश्च
चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम् ॥ ७३ ॥

(सरलार्थः) यत् पापकर्मणो निवारणं करोति, हितकराय च नियो-
जयते, गोपनीयं गोपयति, गुणान् प्रकटयति, विपत्तिग्रस्तं मित्रं समये न
त्यजति तथा यथावसरं द्रव्यादिदानमपि करोति, तदेव 'सन्मित्र'मिति बोध-
यितुं साधवो जना इदं पूर्वोक्तं सन्मित्रलक्षणं प्रवदन्तीत्यर्थः ॥ ७३ ॥

(मनोरमा) जो पाप से बचाता और हित करने में लगाता है ।
गोप्य बातों को छिपाता, और गुणों को प्रकट करता है । आपत्ति में पड़ने
पर छोड़ कर नहीं भागता और यथासमय धन वगैरह दिया करता है ।
सन्त लोग इसी को अच्छे मित्र का लक्षण कहते हैं ॥ ७३ ॥

साधवः प्रार्थनां विनैव परहितायोद्योगं कुर्वन्तीति दिनकराद्युदाहरणेन वदति—

पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति

चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम् ।

नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति

सन्तः स्वयं परहिताभिहिताभियोगाः॥७४॥

(अन्वयः) सन्तः, स्वयं, परहिताभिहिताभियोगाः, (भवन्ति),

(यथा) नाभ्यर्थितः, दिनकरः, पद्माकरं, विकचीकरोति, चन्द्रः, कैरवचक्र-
वालं, विकासयति, जलधरः, अपि, जलं ददाति ॥ ७४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सन्तः=साधवः, स्वयम्=आत्मना, परहिताभि-
हिताभियोगाः=परकीयहितकथितोपायाः, अथवा परहितकथितोत्साहपूर्वकोपायाः,
भवन्तीति शेषः । तत्रोदाहरणमाह—नाभ्यर्थितः=अन्येन केनाऽप्यप्रार्थितः,
दिनकरः=सूर्यः, पद्माकरं=कमलसमूहं, विकचीकरोति=प्रफुल्लं करोति । नाभ्य-
र्थितः, चन्द्रः=चन्द्रमाः, कैरवचक्रवालं=कुमुदमण्डलं, विकासयति=विकसितं
करोति । नाभ्यर्थितः, जलधरः=मेघः, अपि, जलं=वारि, ददाति=प्रयच्छतीति ।
अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् ॥ ७४ ॥

(समासः) परहितेऽभिहितोऽभियोगो येषां ते । पद्मानामाकरः पद्माक-
रस्तम् । कैरवाणां चक्रवालः कैरवचक्रवालस्तम् ॥ ७४ ॥

(कोषः) योगः संहननोपायध्यानसन्नतियुक्तिषु । "उत्साहपूर्वके यत्ने
योगः" इति कोशान्तरम् । प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लव्याकोशविकचस्फुटाः ॥ ७४ ॥

(सरत्कार्यः) यथाऽप्रार्थितः सूर्यः कमलसमूहं स्फुटोकरोति, अप्रार्थित-
चन्द्रमाः कुमुदकुलं विकासयति, अप्रार्थितश्चापि मेघो जलं वर्षति, तथैव
साधुजनाः प्रार्थनां विनाऽपि परहितरता भवन्तीत्यर्थः ॥ ७४ ॥

(मनोरमा) जिस प्रकार बिना प्रार्थना किए सूर्य कमल समूह का
खिलाता है । चन्द्रमा कुमुदिनी समूह को विकसित कर देता है । मेघ जल
वर्षाता है । उसी प्रकार सज्जन बिना कहे ही दूसरों का हित करने में तत्पर
रहते हैं ॥ ७४ ॥

क्रियामेदेन चतुर्विधाः पुरुषा भवन्तीत्याह —

एते सत्पुरुषा परार्थघटकाः स्वार्थं परित्यज्य ये

सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभूतैः स्वार्थाऽविरोधेन ये ।

तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये

ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ॥ ७५ ॥

(अन्वयः) ये, स्वार्थं, परित्यज्य, परार्थघटकाः, एते, सत्पुरुषाः (सन्ति) ये, तु, स्वार्थाऽविरोधेन, परार्थम्, उद्यमभृतः, (एते) सामान्याः, (सन्ति) । ये, स्वार्थाय, परहितं, निघ्नन्ति, ते, अमी, मानुषराक्षसाः, (सन्ति) । ये, निरर्थकं, परहितं, निघ्नन्ति, ते, के, (इति) न, जानीमहे ॥७५॥

(बालमनोरञ्जनी) ये=ये पुरुषाः, स्वार्थं=आत्मनोऽर्थं, परित्यज्य=त्यक्त्वा, परार्थघटकाः=परप्रयोजनसाधकाः, एते=इमे, सत्पुरुषाः=सज्जनाः, उत्तमजना इति यावत्, (सन्ति), ये, तु=पुनः, स्वार्थाऽविरोधेन=स्वप्रयाजनसिद्धिवाञ्छया सहेत्यर्थः । परार्थम्=अन्यप्रयोजनसिद्धयै, उद्यमं विभ्रतीति उद्यमभृतः=उद्योगपरायणाः, (एते) सामान्याः=साधारणाः, मध्यमा इति यावत् (सन्ति) । ये, स्वार्थाय=स्वाभीप्सितफलसिद्धयर्थं, परहितं=परमार्थं, निघ्नन्ति=विनाशयन्ति, ते, अमी=एते, मानुषराक्षसाः=नराधमाः, (सन्ति), ये, निरर्थकं=निष्प्रयोजनं, परहितं=परकार्यं, निघ्नन्ति=विनाशयन्ति, ते पुरुषाः, के, (सन्ति), इति=एतत्, न, जानीमहे=अवगच्छामः, तेऽतिनिन्दनीया इत्यर्थः । अत्र 'शादूलविक्रीडित' नाम वृत्तम् ॥७५॥

(समासः) घटयन्तीति घटकाः । परेषामर्थाः परार्थास्तेषां घटकाः परार्थघटकाः । परस्मादिदं परार्थम् । स्वस्यार्थः स्वार्थस्तस्याऽविरोधेन । मानुषेषु राक्षसा मानुषराक्षसाः । परम्य हितम् ॥७५॥

(कोषः) गुरणमुद्यमे । मनुष्या मानुषा मर्त्या मनुजा मानवा नराः ।

(सरत्नार्थः) ये स्वकार्यं परित्यज्य परकार्यं साधयन्ति ते सत्पुरुषाः सन्ति । ये पुनः स्वकार्यं साधयन् परकार्यं कुर्वन्ति ते साधारणाः पुरुषाः सन्ति । तथा ये स्वकार्यसिद्धयर्थं परकार्यं विनाशयन्ति ते नराधमाः सन्ति । ये तु निष्प्रयोजनं परकार्यं नाशयन्ति ते पुरुषाः के सन्तीति वयं नावगच्छामः, अर्थात्तेऽतिनिन्दनीयाः सन्तीत्यर्थः ॥७५॥

(मनोरमा) जो अपने अर्थ को छोड़ कर दूसरे की अर्थसिद्धि में लग जाते हैं वे सत्पुरुष कहे जाते हैं । जो अपना कार्य करते हुए दूसरे का

कार्य करते हैं वे साधारण कोटि के पुरुष कहलाते हैं । जो अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का कार्य बिगाड़ते हैं वे नराधम हैं, और जो निष्प्रयोजन दूसरे का कार्य बिगाड़ते हैं उन्हें हम नहीं जानते कि वे किस कोटि के पुरुष हैं अर्थात् वे बड़े नीच हैं ॥ ७५ ॥

सतां मैत्री सन्तापप्राप्तावपि न विनश्यतीति पयोदृष्टान्तेन वदति—

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः

क्षीरे तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कुशानौ हुतः ।

गन्तुं पावकमुन्मनस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रापदं

युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥ ७६ ॥

(अन्वयः) सतां, मैत्री, ईदृशी, (अस्ति) पुरा, क्षीरेण, आत्मगतोदकाय, ते, अखिलाः, गुणाः, दत्ताः, क्षीरे, तापम्, अवेक्ष्य, तेन, पयसा, स्वात्मा, कुशानौ, हुतः, तत्, मित्रापदं, दृष्ट्वा, तु, पावकं, गन्तुम्, उन्मनः, अभवत्, (तदेव क्षीरं) तेन, जलेन, युक्तं, (सत्) तु, पुनः, शाम्यति ॥ ७६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) सतां=साधूनां, मैत्री=मित्रता, ईदृशी=नीरक्षी-
रसादृश्यखण्डिता, अस्तीति शेषः । तदेव दर्शयति-पुरा=पूर्व, क्षीरेण=
पयसा, आत्मगतोदकाय=आत्मान्तरितवारिणे, ते=प्रसिद्धाः, अखिलाः=
सम्पूर्णाः, गुणा=रूपमाधुर्यादयः, दत्ताः=उपहृताः (अग्निसंयोगे
सति) क्षीरे=पयसि, दुग्ध इति यावत् । तापम्=उष्णताम्, अवेक्ष्य=अव-
लोक्य, तेन, पयसा=जलेन, स्वात्मा=देहः, कुशानौ=अग्नी, हुतः=प्रज्वालितः,
अग्नितापेन शुष्कमभूदित्यर्थः । तत्=क्षीरं, मित्रापदं=स्वमित्रस्य जलस्य
जलशोषणरूपापत्तिः, दृष्ट्वा=अवलोक्य, तु=पुनः पावकम्=अग्निं, गन्तुं=प्रवेशं
कर्तुम्, उन्मनः=उत्क्रिण्ठितम्, अभवत्=अभूत्, (तदेव क्षीरं) तेन, जलेन=
पयसा, युक्तं=मिश्रितं (सत्) तु, पुनः=भूयः, शाम्यति=शान्तं भवति ।
उत्सिक्तं पयो जलप्रक्षेपेण शान्तं भवतीति लोकप्रसिद्धम् । अत्र 'शार्दूल-
विक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ७६ ॥

(समासः) आत्मानं गतमुदकं यस्मै तस्मै । मित्रस्य आपत्
मित्रापत् ताम् ॥ ७६ ॥

(कोषः) आपः स्त्री भूमिं वार्वारि सलिलं कमलं जलम् । पयः क्रीलाल-
ममृतं जीवनं भुवनं वनम् । कवन्धमुदकं पाथः । दुग्धं क्षीरं पयः समम् ।
कृशानुः पावकोऽनलः ॥ ७६ ॥

(सरलार्थः) आदौ क्षीरेण स्वान्तःस्थितजलाय सर्वे प्रसिद्धा माधु-
र्यादयो गुणाः प्रदत्ताः । ततोऽग्निसंयोगे सति दुग्धे तापं दृष्ट्वा जलेन स्वदे-
होऽग्नौ हुतः । ततो मित्रस्य जलस्य शोषणरूपामापत्तिं दृष्ट्वा क्षीरं बहौ
प्रवेशं कर्तुं मुत्सिक्तमभवत् । पुनस्तदेव क्षीरं जलेन सह मिलित्वा शान्तं भव-
तीति साधुजनानामीदृशी मित्रता भवतीत्यर्थः ॥ ७६ ॥

(मनोरमा) पहले दूध ने अपना रंग, रूप और गुण पानी को दे
दिया, इसके बदले में दूध को जलते देख पानी पहले आप जलने लगा । यह
देख कर दूध ने आग में गिर कर जलना चाहा, पर जब अपने मित्र पानी
का छोटा पाया तो ठण्डा हो गया और आग में जलने से रुक गया । अच्छे
लोगों की दोस्ती ऐसी ही होती है ॥ ७६ ॥

महात्मानो बहूनामाश्रयाः सन्तीति सागरान्योक्त्या वदति—

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा—

मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ।

इतोऽपि बडवानलः सह समस्तसंवर्त्तकै—

रहो ! विततमूर्जितं भरसहस्रं सिन्धोर्वपुः ॥ ७७ ॥

(अन्वयः) इतः, केशवः, स्वपिति, इतः, तदीयद्विषां, कुलम्, च,
इतः, शरणार्थिनां, शिखरिणां, गणाः, शेरते, इतः, अपि, बडवानलः, सन-
स्तसंवर्त्तकैः, सह (तिष्ठति) अहो ! सिन्धोः, वपुः, विततम्, ऊर्जितं,
भरसहस्रं, च (अस्ति) ॥ ७७ ॥

(बालमनोरञ्जनी) । इतः=एकस्मिन् प्रदेशे, केशवः=लक्ष्मीपतिः, स्वपिति=शेते, इतः=एकस्मिन् प्रदेशे, तदीयद्विषां=लक्ष्मीपतिशत्रूणां, दैत्यानामित्यर्थः । कुलं=समूहः, तिष्ठतीति शेषः । च=तथा, इतः, शरणार्थिनां=शरणागतानां, शिखरिणां=पर्वतानां, गणाः=समूहाः, शेरते=तिष्ठन्तीत्यर्थः । इतः, अपि, वडवानलः=वडवाऽग्निः, समस्तसंवर्तकैः=सम्पूर्णप्रलयकारिभिरग्निभिः सह=सार्द्धं, तिष्ठतीति शेषः । 'अहो' इत्याश्चर्यं । सिन्धोः=सागरस्य, वपुः=शरीरं, विततं=विस्तृतम्, ऊर्जितम्=अतिबलिष्ठं, च=तथा, भारसहं=भारसहम्, अस्तीति शेषः । सन्तः समुद्र इवोपकारिणामनुपकारिणां चाऽऽश्रयाः सन्तीति भावः । अत्र श्लोके 'पृथिवी' नाम वृत्तम् । तद्वक्ष्यं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ७७ ॥

(समासः, तदीयाश्च ते द्विषस्तदीयद्विषस्तेषां तदीयद्विषाम् । समस्ताः संवर्तकाः समस्तसंवर्तकास्तैः ॥ ७७ ॥

(कोषः) विष्णुर्नारायणः कृष्णो वैकुण्ठो विष्टरभवाः । दामोदरो हृषीकेशः केशवो माधवः स्वभूः । महीधरो शिखरि-क्षमाभृदहार्यधरपर्वताः ॥७७॥

(सरलार्थः) अत्र लक्ष्मीपतिश्शेते, तथाऽत्र तच्छत्रवोऽपि वसन्ति, क्वचिदत्रैवेन्द्रभयादागत्य शरणार्थिनो गिरयो वसन्ति, प्रलयकारिभिरग्निभिः सह वडवानलोऽप्यत्रैवास्ति । अहो ! समुद्रस्य शरीरं विस्तृतमतिबलिष्ठं भारसहम्वास्तीर्थः ॥ ७७ ॥

(मनोरमां) एक ओर लक्ष्मीपति (विष्णु) सोते हैं और दूसरी ओर उनके शत्रु लोग रहते हैं । कहीं पर इसी में इन्द्र के भय से आकर शरणार्थी पर्वत रहते हैं । प्रलयकारी अग्नियों के साथ वडवानल भी इसी में वास करता है । देखो समुद्र का शरीर कैसा विस्तृत और भार सहने वाला है ॥७७॥

तृष्णादेः परित्यागादिना साधुता भवतीति जनानुपदिशन्नाह—

तृष्णां छिन्वि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः

सत्त्वं ब्रूयन्नुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनान् ।

मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणान्-

कीर्त्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥ ७८ ॥

(अन्वयः) तृष्णां, छिन्धि, क्षमां, भज, मदं, जहि, पापे, रतिं, मा कृथाः, सत्यं, ब्रूहि, साधुपदवीम्, अनुयाहि, विद्वज्जनान्, सेवस्व, मान्यान्, मानय, विद्विषः, अपि, अनुनय, स्वान्, गुणान्, प्रख्यापय, कीर्त्तिं, पालय, दुःखिते, दयां, कुरु, एतत्, सतां, लक्षणम् ॥ ७८ ॥

(बालमनोरञ्जनी) तृष्णां=स्पृहां, छिन्धि=त्यजेत्यर्थः । क्षमां=क्षान्तिं, भज=सेवस्व, मदं=दर्पं, जहि=परित्यज, पापे=पापकर्मणि, रतिम्=अनुरागं, मा कृथाः=मा कुरु, सत्यं=तथ्यं, ब्रूहि=कथय, साधुपदवीं=सज्जन-मार्गम्, अनुयाहि=अनुगच्छ, विद्वज्जनान्=पण्डितजनान्, सेवस्व=भजस्व, मान्यान्=मानयोग्यान्, मानय=मानं कुरु, विद्विषः=शत्रून्, अपि, अनुनय=सान्त्वय, स्वान्=स्वकीयान्, गुणान्, प्रख्यापय=प्रसिद्धिं गमय, कीर्त्तिं=यशः, पालय=रक्ष, दुःखिते=दुःखमापन्ने (जने) दयां=कृपां, कुरु=विधेहि, एतत्=पूर्वोक्तं, सतां=सज्जनानां, लक्षणं=चिह्नं, भवतीति शेषः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमुक्तम् ॥ ७८ ॥

(समासः) साधोः पदवी साधुपदवी ताम् । विद्वान्सर्व ते जना विद्वज्जनास्तान् ॥ ७८ ॥

(कोषः) तृष्णा स्पृहा पिपासे द्वे । क्षितिक्षान्त्योः क्षमा । कृपा दया-ऽनुकम्पा स्यादनुक्रोशोऽपि ॥ ७८ ॥

(सरलार्थः) स्पृहां त्यज, क्षमां सेवस्व, मदं मुञ्च, पापेऽनुरागं मा कुरु, सत्यं वद, सज्जनानां मार्गमनुगच्छ, पण्डितान् भजस्व, मानार्हान्मानय, शत्रून्पि सान्त्वय, स्वगुणान्प्रसिद्धिं नय, यशो रक्ष, दुःखितजने कृपां कुरु, एतत्सज्जनानां लक्षणमस्तीत्यर्थः ॥ ७८ ॥

(मनोरमा) लालच छोड़ दो, क्षमा रखो, घमण्ड न करो, पाप में प्रेम न लगाओ, सत्य बोलो, सत्पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करो, पण्डितों

की सेवा करो, पूज्यजनों का आदर करो, शत्रुओं को भी प्रसन्न करो, अपने गुणों की प्रसिद्धि करो, यश की रक्षा करो, दुःखित जन पर दया करो, यह सत्पुरुषों का लक्षण है ॥ ७८ ॥

सतां लक्षणं प्रकारान्तरेणापि कथयंस्तेषां दौर्भाग्यं वदति—

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा—

स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः ।

परगुणपरमाणून्पर्वतीकृत्य नित्यं

निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः ॥ ७९ ॥

(अन्वयः) मनसि, वचसि, काये, पुण्यपीयूषपूर्णाः, उपकारश्रेणिभिः, त्रिभुवनं, प्रीणयन्तः, परगुणपरमाणून्, पर्वतीकृत्य, नित्यं, निजहृदि, विकसन्तः, सन्तः, कियन्तः, सन्ति ॥ ७९ ॥

(बालमनोरञ्जनी) मनसि=हृदि, वचसि=वाचि, काये=शरीरे, पुण्यपीयूषपूर्णाः=सुकृतसुधापरिपूर्णाः, वाङ्मायमनोभिः सुकृतमेव सम्पादयन्ति न पापमित्यर्थः । उपकारश्रेणिभिः=उपकृतिपरम्पराभिः, त्रिभुवनं=त्रिलोकं, प्रीणयन्तः=तोषयन्तः, सदोपकारमेव कुर्वन्ति नाऽपकारमित्यर्थः । परगुणपरमाणून्=परेषां लघीयसोऽपि गुणान्, पर्वतीकृत्य=पर्वतं यथा बृहदस्ति तदाकारत्वेन मत्वेत्यर्थः । नित्यम्=अनिशं, निजहृदि=स्वमनसि, विकसन्तः=प्रमोदमानाः, सदा परेषां गुणानेव प्रेक्षमाणा न दोषानित्यर्थः । सन्तः=सज्जनाः, कियन्तः=कति, सन्ति=विद्यन्ते, प्रायो विरला एव सन्तीत्यर्थः । अत्र श्लोके 'मालिनी' नाम वृत्तम् ॥ ७९ ॥

(समासः) पुण्यमेव पीयूषं तेन पूर्णाः । उपकाराणां श्रेण्य उपकारश्रेण्यस्ताभिः । परेषां गुणाः परगुणास्तेषां परमाणवः परगुणपरमाणवस्तान् । निजस्य हृत् निजहृत्तस्मिन् ॥ ७९ ॥

(कोषः) अथ कलेवरं गात्रं वपुः संहननं शरीरं वर्ष्म विग्रहः । काये-

देहः क्लीवपुंसोः स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः । स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं
वृषः । पीयूषममृतं सुधा ॥ ७६ ॥

(सरलार्थः) वाक्कायमनःसु सुकृतसुधापरिपूर्णाः, उपकृतिपङ्क्तिमि-
स्त्रिलोकीं तोषयन्तः, परेषां लघूनपि गुणान् पर्वताकारान् कृत्वा, सदा स्वहृदये
प्रमोदमानाः सन्तः कति सन्ति, अर्थाद्विरला एव सन्तीत्यर्थः ॥ ७५ ॥

(मनोरमा) जिसके मन, वाणी, शरीर में सुकृतरूपी सुधा भरी पड़ी
है और उपकार की परम्परा द्वारा त्रिभुवन को तृप्त करते हुए दूसरे के थोड़े
गुणों को भी बहुत बनाते हुए नित्य अपने हृदय में प्रसन्न होने वाले सज्जन
कितने मिलेंगे ! ॥ ७६ ॥

* सन्तः स्वनिष्ठान् गुणान् परेषु सङ्क्रामयन्तीति मलयान्योक्त्यां वदति—

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा

यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव

मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण

कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ॥८०॥

(अन्वयः) यत्र, च, आश्रिताः, तरवः, ते, तरवः, एव, भवन्ति,
तेन, हेमगिरिणा, वा, रजताद्रिणा, किं, (वयं तु) मलयम्, एव, मन्यामहे,
यदाश्रयेण, कङ्कोलनिम्बकुटजाः, अपि, चन्दनाः, स्युः ॥ ८० ॥

(वालमनोरञ्जनी) यत्र=हेमगिरौ, रजतगिरौ वा, च, आश्रिताः=
स्थिताः, तरवः=पादपाः, तरवः=वृक्षाः, एव, भवन्ति=तत्स्वरूपा न भवन्ती-
त्यर्थः । तेन=एवम्भूतेन, हेमगिरिणा=सुवर्णपर्वतेन, वा=अथवा, रजत-
गिरिणा=रजतपर्वतेन, किं=किं फलं, किमपि नेत्यर्थः । (वयं तु) मलयं=
मलयाचलम्, एव, (महान्तं) मन्यामहे=जानीमहे । कुत इति शेषः । यदा-
श्रयेण=यत्सहकारेण, कङ्कोलनिम्बकुटजाः=कङ्कोलारिष्टवत्सकाः, अपि, चन्दनाः
=चन्दनवृक्षाः, स्युः=भवन्ति । अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् ॥८०॥

(समासः) हेमनो गिरिर्हेमगिरिस्तेन हेमगिरिणा । रजतस्याद्री रजता-
द्रिस्तेन । यस्याऽऽश्रयो यदाश्रयस्तेन । कङ्कोलाश्च निम्बाश्च कुटजाश्च ते
कङ्कोलनिम्बकुटजाः ॥ ८० ॥

(कोषः) अद्रिः गोत्र-गिरि-ग्रावाऽचल-शैल-शिलोच्चयाः । अरिष्टः सर्वतो-
भद्र-हिङ्गुनिर्यास-मालकाः । पिचुमन्दश्च निम्बे..... । अथ कुटजः शक्रो
वत्सको गिरिमल्लिकाः ॥ ८० ॥

(सरलार्थः) यत्र स्थिता वृक्षा वृक्षा एव सन्ति तदाश्रयेण तत्स्वरूपा
न भवन्ति, तेन सुवर्णपर्वतेन रजतगिरिणा न किमपि फलम् !, वयं तु
मलयाचलमेव महान्तं जानीमहे यत्र स्थिताः कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दन-
वृक्षा इव भासन्त इत्यर्थः ॥ ८० ॥

(मनोरमा) सोने के पर्वत-सुमेरु से और चाँदी के पर्वत-कैलास से
क्या । जिनके वृक्ष वृक्ष ही रह गए । हम तो मलयागिरि को सबसे बड़ा
जानते हैं जिसने अपने ऊपर के कङ्कोल, निम्ब कुटज को भी चन्दन
मय बना दिया ॥ ८० ॥

धीरा जना निश्चितार्थाद्विजैरभिभूता अपि न विरमन्तीति समुद्रमथनप्रवृत्त-
देवोदाहणेन वदति—

रत्नैर्महाहैस्तुषुर्न देवा

न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।

सुधां विना न प्रययुर्विरामं

न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ॥ ८१ ॥

(अन्वयः) धीराः, निश्चितार्थात्, न, विरमन्ति, देवाः, महाहैः,
रत्नैः, न, तुषुः, तथा, भीमविषेण, भीतिं, न, भेजिरे, (किन्तु) सुधां,
विना, विरामं, न, प्रययुः ॥ ८१ ॥

(बालमनोरञ्जनी) धीराः=गम्भीरपुरुषाः, निश्चितार्थात्=निश्चित-
कार्यात्, निश्चितमर्थं प्राप्येत्यर्थः । न=नो, विरमन्ति=विरामं कुर्वन्ति,

प्रारब्धं कार्यं न त्यजन्तीत्यर्थः । तत्रोदाहरणमाह-देवाः=सुराः, महाहैः=महामूल्यैः, रत्नैः=मणिभिः, न=नो, तुतुषुः=सन्तोषमापुः, पीयूषमथनावसरे, समुद्रादुत्पन्नैरपि मण्यादिभिस्तृप्ता न बभूवुरित्यर्थः । तथा, भीमविषेण=घोरगरलेन, भीतिं=भयं, न भेजिरे=सिषिवुः, महाभयोत्पादकेन विषेणापि भीतिं नाऽऽपुरित्यर्थः । (किन्तु) सुधाम्=अमृतं, विना, विरामं=विश्रान्तिं, न, प्रययुः=प्रापुः । प्राप्तव्यतया निश्चितार्थरूपाममृतोपलब्धिमन्तरा प्रयत्नं न तत्प्रययुरित्यर्थः । अत्र श्लोके 'उपेन्द्रवज्रा' नाम वृत्तम् ॥८१॥

(समासः) निश्चितश्चासावर्थो निश्चितार्थस्तस्मात् । भीमश्च तद्विषं भीमविषं तेन ॥ ८१ ॥

(कोषः) रत्नं मणिर्द्वयोरश्मजातौ मुक्तादिकेऽपि च । दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् । क्ष्वेडस्तु गरलं विषम् ॥ ८१ ॥

(सरलार्थः) यथाऽमृतमथनार्थं प्रवृत्ताः सुरा मथनावसरे बहुमूल्यानि रत्नान्यपि प्राप्य सन्तोषं, भीषणेनाऽपि गरलेन भीतिं च न प्रापुः, किन्तु निश्चितार्थरूपां सुधोपलब्धिमन्तरा यत्नं न तत्प्रययुस्तथैव धीराः पुरुषा निश्चितार्थाद्विरामं न कुर्वन्तीत्यर्थः ॥ ८१ ॥

(मनोरमा) अमृत मथन में लगे हुए देवतागण मथन के समय समुद्र से निकले हुए बहुमूल्य रत्नों को भी पाकर सन्तुष्ट नहीं हुए । भयंकर विष के भय से डर नहीं गए । किन्तु निश्चित अर्थ रूपी सुधा प्राप्ति को छोड़कर बैठ नहीं गए । इसी तरह धीर पुरुष अपने निश्चित कार्य में तब तक प्रयत्न करते रहते हैं, जब तक कि उसे कर नहीं लेते ॥ ८१ ॥

स्वकार्यं साधयन् पुरुषो मध्ये प्राप्तं सुखदुःखादिकं न गणयेदिति सूचयन्नाह—

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनं

क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।

कचित्कन्थाधारी कचिदपि च दिव्याम्बरधरो

मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ॥८२॥

(अन्वयः) कचित्, भूमौ, शय्या, कचिद्, अपि, च पर्यङ्कशयनं, क्वचित्, शाकाहारी, क्वचिद्, अपि, च, शाल्योदनरुचिः, क्वचित्, कन्थाधारी, क्वचिद्, अपि, च, दिव्याम्बरधरः (भवति), कार्यार्थी, मनस्वी, दुःखं, न, सुखं च, न, गणयति ॥ ८२ ॥

(बालमनोरञ्जनी) क्वचित्=कदाचित्, भूसौ=पृथिव्यां, शय्या=शयनं, क्वचित्, अपि, च, पर्यङ्कशयनं=मञ्चशयनं, क्वचित्, शाकाहारी=शाकभोजी, क्वचित्, अपि, च, शाल्योदनरुचिः=शाल्योदनभोजीत्यर्थः । क्वचित्, कन्थाधारी=प्रावरणविशेषधारी, क्वचित्, अपि, च, दिव्याम्बरधरः=सुन्दरवस्त्रधारकः, भवतीति शेषः । कार्यार्थी=कार्येच्छुः, मनस्वी=विवेकी, [एतादृशः पुरुषः] दुःखं=कष्टं, न=नो, सुखम्=आनन्दं, च=अपि, न=नो, गणयति=मनुते, विचारयतीत्यर्थः । अत्र श्लोके 'शिखरिणी' नाम वृत्तम् ॥८२॥

(समासः) पर्यङ्के शयनं पर्यङ्कशयनम् । शाल्योदने रुचिर्यस्य सः । दिव्यञ्च तदम्बरं दिव्याम्बरं तस्य धरः ॥ ८२ ॥

(कोषः) ...शय्यायां शयनीयवत् । शयनं... । मञ्च-पर्यङ्क-पत्यङ्काः खट्वया समाः । स्यादानन्दधुरानन्दः शर्म शात-सुखानि च ॥ ८२ ॥

(सरलार्थः) कदाचित्पृथिव्यां शेते, कदाचिन्मञ्चस्थोपरि शेते, कदाचिच्छाकमेव भुंक्ते, क्वचिच्छाल्योदनमश्नाति, कदाचिज्जीर्णं वस्त्रं धारयति, कदाचिच्च दिव्याम्बरं धारयति, कार्येच्छुर्बुद्धिमानेवविधः पुरुषः स्वकार्यकाले दुःखं-सुखं वा न किञ्चिद्गणयतीत्यर्थः ॥ ८२ ॥

(मनोरमा) कभी भूमि पर सोता है और कभी पलंग पर, कभी शाक ही खाकर रह जाता है, कभी अच्छे चावल का भात । कभी फटा पुराना कपड़ा पहनता है, कभी सुन्दर वस्त्र धारण करता है । कार्य चाहने वाले बुद्धिमान् पुरुष कार्य के समय सुख दुःख नहीं समझते ॥ ८२ ॥

सुजनतादिसकलभूषणापेक्षया शीलमेवोत्तमं भूषणमस्तीति बोधयन्नाह—

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।

अक्रोधस्तपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता

सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ॥८३॥

(अन्वयः) सुजनता, ऐश्वर्यस्य, विभूषणं, (भवति), शौर्यस्य, वाक्संयमः, ज्ञानस्य, उपशमः, श्रुतस्य, विनयः, वित्तस्य, पात्रे, व्ययः, तपसः, अक्रोधः, प्रभवितुः, क्षमा, धर्मस्य, निर्व्याजता, सर्वेषाम्, अपि, सर्वकारणम्, इदं, शीलं, परं, भूषणम्, (अस्ति) ॥८३॥

(वालमनोरञ्जनी) सुजनता=सौजन्यम्, ऐश्वर्यस्य=विभूतेः, विभूषणम्=अलङ्करणं, भवतीति शेषः । एवमुत्तरत्रापि 'भवति' इत्यस्यान्वयः कार्यः । शौर्यस्य=बलस्य, वाक्संयमः=वाङ्नियमः, स्वस्मिन् बले सति तत् काऽपि वचसा न प्रकाशयितव्यमित्यर्थः । ज्ञानस्य=तत्त्वज्ञानस्य, उपशमः=शान्तिः, तत्त्वज्ञानवता शान्तिरवलम्बनीयेत्यर्थः । श्रुतस्य=वेदादिसकलशास्त्रश्रवणस्य, विनयः=नम्रता, सकलशास्त्रश्रवणेन नम्रता सम्पादनीयेत्यर्थः । वित्तस्य=द्रव्यस्य, पात्रे=सत्पात्रे, कुलीन इति यावत् । व्ययः=विसर्जनं, सति द्रव्ये सत्पात्रेऽवश्यमेव दानं कर्तव्यमित्यर्थः । तपसः=तपश्चर्यायाः, अक्रोधः=क्रोधाभावः, तपस्विभिः क्रोपो न कार्य इत्यर्थः । प्रभवितुः=प्रभाविनः, निग्रहानुग्रहविधौ समर्थस्येत्यर्थः । क्षमा=क्षान्तिः, निग्रहानुग्रहविधौ समर्थेन क्षमा कर्तव्येत्यर्थः । धर्मस्य=सुकृतस्य, स्वधर्माचरणशीलस्येति यावत् । निर्व्याजता=निष्कपटता, धर्माचरणशीलैः कपटो न कार्य इत्यर्थः । सर्वेषां=सर्वलोका-नाम्, अपि, सर्वकारणं=सर्वगुणबीजम्, इदं, शीलं=स्वभावः, परं=श्रेष्ठम्, उत्तममिति यावत् । भूषणम्=अलङ्करणम्, अस्तीति शेषः । एते सर्वेऽपि गुणाः स्वभावेनैवोपलभ्यन्ते नान्यथेति भावः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नामधेयम् ॥

(समासः) वाचां संयमो वाक्संयमः । न क्रोधोऽक्रोधः । सर्वेषां कारणं सर्वकारणम् ॥८३॥

(क्रोधः) अलङ्कारस्त्वाभरणं परिष्कारो विभूषणम् । हेतुर्ना कारणं बीजम् ॥८३॥

(सरलार्थः) ऐश्वर्ये सति सौजन्यं, शौर्ये सति वाङ्मनियमः, ज्ञाने सति शान्तिः, शास्त्रश्रवणे सति विनयः, सति धने सत्पात्रे व्ययः, तपसि सति कोपाभावः, प्रभवितरि सति क्षमा, धर्माचरणे सति निष्कपटता चालङ्कारोऽस्ति, तथा सर्वेषां जनानां, सर्वेषां गुणानां कारणमिदं शीलं श्रेष्ठं भूषणमस्तीत्यर्थः ॥८३॥

(मनोरमा) ऐश्वर्य का भूषण सुजनता, शौर्य का वाक्संयम, ज्ञान का शान्ति, शास्त्र पढ़ने का विनय, धन का पात्र पाकर दान करना, तपस्या का क्रोध न करना, प्रभुता का क्षमा, धर्म का निर्व्याजता और इन सब गुणों का उत्तम भूषण स्वभाव है ॥८३॥

धीरजना न्यायमार्गात् प्रविचलन्तीत्याह—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु

लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अद्यैव मे मरणमस्तु युगान्तरे वा

न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥८४॥

(अन्वयः) नीतिनिपुणाः, (पुरुषाः) निन्दन्तु, यदि, वा, स्तुवन्तु, लक्ष्मीः, यथेष्टं, समाविशतु, वा, गच्छतु, अथ, एव, वा, मरणम्, अस्तु, वा, युगान्तरे, (अस्तु), तथापि, धीराः, न्यायात्, पथः, पदं, न, प्रविचलन्ति ॥

(बालमनोरञ्जनी) नीतिनिपुणाः=नयकुशलाः, (पुरुषाः) निन्दन्तु=निन्दां कुर्वन्तु, यदि, वा=अथवा, स्तुवन्तु=प्रशंसन्तु, लक्ष्मीः=सम्पत्, यथेष्टं=यथेच्छं, समाविशतु=आगच्छतु, वा=अथवा, गच्छतु=प्रयातु, अथ=अस्मिन्दिने, एव, मरणं=निधनम्, अस्तु=भवतु, वा=अथवा, युगान्तरे=कल्पान्तरे

(अस्तु) (तथापि) धीराः=गम्भीराः पुरुषाः, न्यायादनपेतो न्यायस्तस्मात्-
न्यायात्=न्याययुक्तात्, पथः=मार्गात्, (न्यायमार्गं परित्यज्याऽभ्यत्रैकमपि)
पदं=चरणं, न=नो, प्रविचलन्ति=इतस्ततो भवन्ति । एतेन सत्स्वपि निन्दादिषु
न्यायमार्गो न परित्याज्य इत्युक्तम् । अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्ताम् ।

(समासः) नीत्यां निपुणा नीतिनिपुणाः । अन्यद्युगं युगान्तरं तस्मिन् ।

(कोषः) नयो नाये । यानाद्यङ्गे युगः पुंसिः ।

(सरलार्थः) नीतिचतुराः पुरुषा निन्दां स्तुतिं वा कुर्वन्तु, लक्ष्मीर्यथे-
च्छमागच्छतु गच्छतु वा, अथैव मरणं भवतु युगान्तरे वा, परन्तु धीरा
जना न्यायमार्गादेकमपि पदमितस्ततो न चलन्तीत्यर्थः ॥ ८४ ॥

(मनोरमा) नीति में चतुर जन चाहे निन्दा करें या स्तुति । लक्ष्मी
आकर रहें या चली जाय । आज ही मरण हो या युगान्तर में । परन्तु धीर
पुरुष न्यायमार्ग से एक पग भी इधर उधर विचलित नहीं होते ॥ ८४ ॥

पुरुषस्य वृद्धौ क्षये वा प्रारब्धमेव कारणमस्तीति सूर्यदृष्टान्तेन वदति—

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्ग्लानेन्द्रियस्य क्षुधा

कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ।

तृप्तस्तपिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा

लोकाः ! पश्यत दैवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ॥ ८५ ॥

(अन्वयः) हे लोकाः !, (यूयं) नृणां, वृद्धौ, क्षये, दैवम्, एव,
कारणं, हि, पश्यत, करण्डपीडिततनोः, भग्नाशस्य, क्षुधा, ग्लानेन्द्रियस्य, हि,
भोगिनः, मुखे, आखुः, विवरं, कृत्वा, नक्तं, स्वयं, निपतितः, असौ, (तु)
तपिशितेन, तृप्तः, (सन्) तेन, एव, पथा, सत्वरं, (बहिः) यातः ॥ ८५ ॥

(बालमनोरञ्जनी) हे लोकाः ! =हे जनाः ! (यूयं) नृणां=मनु-
ष्याणां, वृद्धौ=ऐश्वर्ये, क्षये=नाशे, दैवं=भाग्यम्, एव, कारणं=हेतुः, हि=
निश्चितं, पश्यत=अवलोकयत । तदेवोदाहरति—करण्डपीडिततनोः=करण्डान्त-

र्गतत्वेन व्यथितशरीरस्य, [अत एव] भग्नाशस्य=नष्टबहिर्निष्क्रमणाशस्य, क्षुधा=
 बुभुक्षया, म्लानेन्द्रियस्य=क्षीणेन्द्रियस्य, भोगिनः=सर्पस्य, मुखे=आनने, आखुः=
 मूषक, विवरं=करण्डे छिद्रं, कृत्वा=विधाय, नक्तं=रात्रौ, स्वयम्=आत्मना, निप-
 तितः=पतितः, (न केनाऽपि पातितः) असौ=एषः सर्पः, (तु) तत्पिशितेन
 =मूषकमासेन, वृत्तः=सन्तुष्टः (सन्), तेन=मूषकबहितेन, एव, पथा=मार्गेण,
 सत्वरं=शीघ्रं, (बहिः) यातः=निर्गतः । यथा करण्डगतं सर्पमजानन्मूषकः
 करण्डविवरं विधायान्तः प्रविष्टः, ततः स्वदैववशादेव तन्मुखे पतित्वा मृतः ।
 सर्पस्तु स्वभाग्यवशादेव तत्पिशितेन सन्तुष्टः सन् तत्कृद्विवरद्वारेण बहिर्निर्गत्य
 सुखितोऽभूत्, तथैव रीत्या सर्वोऽपि जनः स्वभाग्यवशादेव सुखदुःखादिकं
 प्राप्नोतीति भावार्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ८५ ॥

(समासः) करण्डे पीडिता तनुर्यस्य तस्य । भग्ना आशा यस्य सः
 तस्य । म्लानानिन्द्रियाणि यस्य तस्य । तस्य पिशितं तत्पिशितं तेन ॥ ८५ ॥

(कोषः) गडुः करण्डो लगुडो वरण्डश्च किणो घुणः । अशना या
 बुभुक्षा क्षुन् । उरगः पन्नगो भोगी जिह्वागः पवनाशनः । उन्दुर्मुषकोऽप्याखुः ।
 ...अथ कुहरं सुषिरं विवरं विलम् । छिद्रं निर्व्यथनं रोकं रन्ध्रं श्वन्नं वग
 चुषिः । पिशितं तरसं मांसं पल्लं कव्यमामिषम् । ...अथ शीघ्रं त्वरितं लघु
 क्षिप्रमरं द्रुतम् । सत्वरं चपलं तूर्णमविलम्बितमाशु च ॥ ८५ ॥

(सरलार्थः) करण्डान्तर्गतत्वेन व्यथितवपुषो नष्टबहिर्निष्क्रमणाशस्य
 बुभुक्षया क्षीणेन्द्रियस्य सर्पस्य मुखे मूषकः करण्डविवरं कृत्वा रात्रौ स्वयमे-
 वान्तः प्रविष्टः । सर्पस्तु मूषकस्य मासेन सन्तुष्टः सन् तेनैव मार्गेण 'शीघ्र'
 बहिर्निष्क्रान्तः । हे लोकाः ! एवं रीत्या यूयं मनुष्याणामैश्वर्ये क्षये वा भाग्य-
 नेव कारणमस्तीत्यवलोक्यतेत्यर्थः ॥ ८५ ॥

(मनोरमा) साँप भपोला में बन्द, भूख से पीडित और उदास पड़ा

* यहाँ 'करण्ड' का अर्थ बाँसका बना हुआ 'भपोला' है । जिस में
 चाजीगर लोग साँपों को पकड़ कर रखते हैं ।

था । एक मूसा उस झपोले में छेदकर रात को अन्दर घुस गया और उसके मुह में जा पड़ा । उस मूसेको खाकर उसी छेद से वह साँप, प्रसन्नचित्त होकर निकल आया । हे लोगो ! आप लोग मनुष्यों की हानि और लाभ का कारण दैव को ही समझें ॥५॥

आलस्यं परित्यज्योद्यमकर्ता जगति सुखं प्राप्नोतीत्युच्यते—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।

नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कुर्वाणो नावसीदति ॥८६॥

(अन्वयः) आलस्यं, मनुष्याणां, शरीरस्थः, महान्, रिपुः, हि, (अस्ति) उद्यमसमः, बन्धुः, न, अस्ति, (तं) कुर्वाणः, न, अवसीदति ॥८६॥

(बालमनोरञ्जनी) आलस्यं=निस्व्योगित्वं, व्यापारराहित्यमित्यर्थः । शरीरे तिष्ठतीति शरीरस्थः=देहस्थः, महान्=प्रबलः, शत्रुः=अरिः । हि=निश्चितम्, अस्तीति शेषः । उद्यमसमः=उद्योगसदृशः, बन्धुः=हितकारी, न=नो, अस्ति=विद्यते । तमिति शेषः । कुर्वाणः, (पुरुषः) न=नो, अवसीदति=दारिद्र्यादिदुःखमवाप्नोति । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥८६॥

(समासः) उद्यमेन सम उद्यमसमः ॥८६॥

(कोषः) रिपौ वैरि-सपत्नारि-द्विषद्-द्वेषण दुर्हृदः । सगोत्र बान्धव-ज्ञाति-बन्धु-स्व-स्वजनाः समाः ॥८६॥

(सरलार्थः) आलस्यमेव पुरुषाणां शरीरस्थः प्रबलो रिपुरस्तीति निश्चितम् । उद्यमसदृशः कोऽपि बन्धुर्नास्ति । अतस्तमुद्यमं प्रकुर्वाणो नरो न कदापि दारिद्र्यादिदुःखं प्राप्नोतीत्यर्थः ॥८६॥

(मनोरमा) आलस्य पुरुषों का सबसे प्रबल शरीरस्थित शत्रु है—यह निश्चित है । उद्यम के समान कोई बन्धु नहीं है, अतः उद्यम करने वाला कभी कष्ट नहीं पाता ॥८६॥

विपदा सन्तो न सन्तप्यन्त इति तरुचन्द्रदृष्टान्तेन वदति—

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।

इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न ते विपदा ॥८७॥

(अन्वयः) तरुः, छिन्नः, अपि, (पुनः) रोहति, क्षीणः, अपि, चन्द्रः, पुनः, उपचीयते, इति, विमृशन्तः, ते, सन्तः, विपदा, न, सन्तप्यन्ते ॥८७॥

(बालमनोरञ्जनी) तरुः=वृक्षः, छिन्नः=विदीर्णः, अपि, (पुनः) रोहति=प्रादुर्भवति, क्षीणः=ग्लपितः, चन्द्रः=चन्द्रमाः, पुनः=भूयः, उपचीयते=वृद्धिं प्राप्नोति, इति=इत्थम्, (विपदा आगमापायित्वं) विमृशन्तः=विचारयन्तः, ते=ख्यातिमुपगताः, सन्तः=सज्जनाः, विपदा=आपदा, न=नो, सन्तप्यन्ते=दुःखं प्राप्नुवन्ति । अत्र श्लोके 'आर्या' नाम वृत्तम् ॥८७॥

(कोषः) वृक्षो महीरुहः शाखो विटपी पादपस्तरुः । हिमांशुश्चन्द्र-
माश्चन्द्र इन्दुः कुमुदवान्धवः ॥८७॥

(सरलार्थः) विदीर्णोऽपि वृक्षः पुनः प्रादुर्भवति तथा क्षीणकलश्च-
न्द्रमा अपि पुनर्वृद्धिं प्राप्नोतीति विचारयन्तः साधवः विपदा न कदापि दुःखं
प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ॥ ८७ ॥

(मनोरमा) काटा हुआ पेड़ फिर उगता है और क्षीण हुआ चन्द्रमा
फिर भी वृद्धि को प्राप्त करता है, इस प्रकार विचार करने वाले सज्जन कभी
दुःख नहीं पाते ॥ ८७ ॥

प्रतिकूले दैवे पौरुषं निरर्थकं भवतीतीन्द्रदृष्टान्तेन वदति—

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः

स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो वारणः ।

इत्यैश्वर्यबलान्वितोऽपि बलभिद्भग्नः परैः सङ्गरे

तद्युक्तं ननु दैवमेव शरणं धिग्धिक् वृथा पौरुषम् ॥८८॥

(अन्वयः) यस्य, नेता, बृहस्पतिः, प्रहरणं, वज्रं, सुराः, सैनिकाः,

दुर्गं, स्वर्गः, हरेः, अनुग्रहः, किल, वारणः, ऐरावतः, इति, ऐश्वर्यबलान्वितः, अपि, बलमिदं, सङ्गरे, परैः, भग्नः, तत्, ननु, दैवम्, एव, शरणां, (इति) युक्तं, वृथा, पौरुषं, धिक् ॥ ८८ ॥

(बालमनोरञ्जनी) यस्य=इन्द्रस्य, नेता=नायकः, बृहस्पतिः=गुरुः, प्रहरणम्=आयुधं, वज्रं=कुलिशं, सुराः=देवाः, सैनिकाः=सैन्याः, दुर्गं=राजनिवेशनं, स्वर्गः=द्यौः, हरेः=विष्णोः, अनुग्रहः=कृपा, किल=इति श्रूयते, वारणः=हस्ती, ऐरावतः=अश्वमातङ्गः, इति=उक्तरीत्या, ऐश्वर्यबलान्वितः=विभूतिबलशाली, अपि, बलमिदं=इन्द्रः, सङ्गरे=सङ्ग्रामे, परैः=शत्रुभिः, दैत्यैरिति यावत् । भग्नः=पराजितः, तत्=तस्मात्, ननु=निश्चितं, दैवम्=अदृष्टम्, एव, शरणां=रक्षितृ, (इति) युक्तं=स्पष्टं, (तस्मात्) वृथा=दैवहीनं, पुरुषं=पुरुषसामर्थ्यं, धिक् धिक्=धिकारोऽस्त्वित्यर्थः । अदृष्टहीनः पुरुषप्रयत्नः सुतरां निष्फल इति भावः । अत्र श्लोके 'शादूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ८८ ॥

(समासः, ऐश्वर्यञ्च बलञ्चैश्वर्यबले ताभ्यामन्वितः ॥ ८८ ॥

(कोषः बृहस्पतिः सुराचार्यो गीष्पतिर्धौषणो गुरुः । सेनायां समवेता ये सैन्यास्ते सैनिकाश्च ते । ऐरावतोऽश्वमातङ्गैरावणाभमुबल्लभाः । मतङ्गजो गजो नागः कुब्जरो वारणः करी ॥ ८८ ॥

(सरलार्थः) यस्येन्द्रस्य बृहस्पतिर्नायकः, आयुधं कुलिशं, सुराः सैनिका, दुर्गं स्वर्गः, विष्णोः कृपा, वारण ऐरावतः, इति विभूतिबलशाली-न्द्रोऽपि संग्रामे परैः पराजितः । तस्मान्निश्चितं दैवमेव प्रबलं शरणमिति स्पष्टम् । तस्मादैवहीनं पौरुषं धिगस्त्वित्यर्थः ॥ ८८ ॥

(मनोरमा : जिसके नेता बृहस्पति थे, हथियार वज्र था, और सैनिक देवता लोग थे, स्वर्ग किला था, सहायता करने वाले विष्णु थे, ऐरावत हाथी था, इस प्रकार बलशाली इन्द्र भी अपने शत्रु असुरों से हार जाते थे, इसलिए यही कहना चाहिए कि दैव ही प्रबल रक्षक है । भाग्यहीन पौरुष व्यर्थ है ॥ ८८ ॥

सर्वकृत्यस्य कर्माधीनत्वेऽपि सुधीर्मिथ्यैवकार्यं तद्विचारपूर्वकमेव कार्यमिति बोधयन्नाह— ।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।

तथाऽपि सुधिया भाव्यं सुविचार्यैव कुर्वता ॥८९॥

(अन्वयः) (यद्यपि) पुंसां, फलं, कर्मायत्तम्, (अस्ति) बुद्धिः, कर्मानुसारिणी, (अस्ति) तथापि, सुधिया, सुविचार्य, एव (कर्म) कुर्वता, भाव्यम् ॥ ८९ ॥

(बालमनोरञ्जनी) [यद्यपि] पुंसां=पुरुषाणां, फलं=सुखदुःखादिरूपं, कर्मायत्तं=कर्माधीनम्, [अस्ति] यादृशं कर्म तदनुकूलमेव सुखदुःखादिकं भवतीत्यर्थः । [सती असती वा] बुद्धिः=धीः, कर्मानुसारिणी=कर्मानुगामिनी, [अस्ति] तथापि=तदपि, सुधिया=पण्डितेन, सुविचार्य=सम्यग्विचारं कृत्वा, एव, [कर्म] कुर्वता=साधयता, भाव्यम् । धीमता पुरुषेण यद्यत्कर्म कर्तव्यं, तत्सर्वं विचार्यैव करणीयमिति भावः । अत्र श्लोके 'अनुष्ठुप्' नाम वृत्तम् ॥ ८९ ॥

(समासः) कर्मण आयत्तं कर्मायत्तम् । कर्मणोऽनुसारिणी कर्मानुसारिणी ॥ ८९ ॥

(कोषः) अधीनो निधन आयत्तोऽस्त्वच्छब्दो गृह्यकोऽप्यसौ । विद्वान्विपश्चिद्दोषज्ञः सन् सुधीः कोविदो बुधः ॥ ८९ ॥

(सरलार्थः) यद्यपि पुरुषाणां सुखदुःखादिकं फलं कर्मणोऽनुकूलमेवास्ति तथा बुद्धिः कर्मानुसारिण्यस्ति, तथापि बुद्धिमता पुरुषेण यद्यत्कर्म कर्तव्यं तत्सर्वं विचार्यैव कर्तव्यमित्यर्थः ॥ ८९ ॥

(मनोरमा) यद्यपि मनुष्यों को अपने कर्म के अनुकूल ही सुख दुःख इत्यादि फल मिलते हैं, और बुद्धि कर्म के हिसाब से होती है । फिर भी मनुष्यों को चाहिये कि जो कुछ करें सब विचार कर ही करें ॥ ८९ ॥

भाग्यहीनः पुरुषो यत्र कुत्रापि गतो दुःखमेव लभत इति खल्वाटवृष्टान्तेन
वदति —

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके
वाञ्छन्देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः ।

तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ॥ ९० ॥

(अन्वयः) यत्र, भाग्यरहितः, गच्छति, तत्र, एव, आपदः, प्रायः,
यान्ति, खल्वाटः, दिवसेश्वरस्य, किरणैः, मस्तके, संतापितः, (सन्) अना-
तपं, देशं, वाञ्छन्, विधिवशात्, तालस्य, मूलं, गतः, तत्र, अपि, पतता,
महाफलेन, अस्य, शिरः, सशब्दं, भग्नम् ॥ ६० ॥

(बालमनोरञ्जनी) यत्र=यस्मिन्प्रदेशे, भाग्यरहितः=भाग्यहीनः,
(पुरुषः) गच्छति=याति, तत्र=तस्मिन् प्रदेशे, एव, (तम्प्रति) आपदः
=विपदः, प्रायः=बाहुल्येन, यान्ति=गच्छन्ति, तदेव दृष्टान्तेनाह—खल्वाटः=
केशरहितशिराः (पुरुषः) (वह्निर्भ्राम्यन्) दिवसेश्वरस्य=दिनपतेः, सूर्यस्ये-
त्यर्थः । किरणैः=अंशुभिः, मस्तके=शिरसि, संतापितः=परितापितः (रुन्)
अनातपम्=आतपरहितं, देशं=आश्रयप्रदेशं, वाञ्छन्=इच्छन्, विधिवशात्=
दैववशात्, तालस्य=तालवृक्षस्य, मूलम्=अधःप्रदेशं, गतः=प्राप्तः, तत्र=
तस्मिन्स्थले, अपि, (अदृष्टवशादकस्मात्) पतता=अधःपतता, महाफलेन,
अस्य=खल्वाटस्य, शिरः=मस्तकं, सशब्दं=सशब्दं यथा स्यात्तथेत्यर्थः ।
भग्नं=चूर्णितम्, अभूदिति शेषः । यथा सूर्यकिरणसंतप्तः खल्वाटश्चायाप्रदेशे
गतोऽप्यकस्मात्पतितेन तालफलेन भग्नशिरा अभवत्तथैव भाग्यरहितो नरोऽपि
यत्र कुत्रापि गतो बाहुल्येन दुःखमेव प्राप्नोतीति भावः । अत्र श्लोके 'शार्दूल-
विक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ६० ॥

(समासः) भाग्येन रहितो भाग्यरहितः । दिवसस्येश्वरो दिवसेश्वर-
स्तस्य । न विद्यत आतपो यस्मिन्स्तम् । विधेर्वशो विधिवशस्तस्मात् ॥ ६० ॥

(कोषः) किरणोऽस्त्र-मयूखांशु-गभस्ति-घृणि-रश्मयः । भानुः करो मरीचिः क्षी-पुंसयोर्दधिनिः क्षियाम् । उत्तमाङ्गं शिरः शीर्षं मूर्ध्ना ना मस्तकोऽक्षियाम् । नृणराजाह्वयस्तालः ॥ ६० ॥

(सरलार्थः) कश्चित् खल्वाटः पुरुषो वहिर्भाम्यन् सूर्यांशुभिः शिरसि सन्तापितः सन्नातपरहितं प्रदेशं वाञ्छन् दैववशात्तालवृक्षस्याधोभागे गतः । तत्रापि दैववशादकस्मात्पतता महाफलेन तस्य सशब्दं शिरो भग्नमभूत् । यत्र भाग्यरहितः पुरुषो गच्छति तत्र तम्प्रति विपत्तयोऽपि गच्छन्तीत्यर्थः ॥ ६० ॥

(मनोरमा) बाहर घूमता हुआ कोई गंजे माथा वाला पुरुष सूर्य की किरणों से सन्तप्त हो किसी छायादार स्थान की इच्छा से ताड़ के पेड़ के नीचे गया । वहाँ पर भी अकस्मात् ताड़ पर से एक बहुत बड़ा फल उसके माथे पर गिरा और शब्द करता हुआ उसका शिर फूट गया । भाग्यहीन पुरुष जहाँ जाते हैं वहाँ विपत्तियाँ भी जाती हैं ॥ ६० ॥

सर्वत्र दैवमेव बलीय इति दृष्टान्तपूर्वक वदति—

गजभुजङ्गमयोरपि बन्धनं

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनम् ।

मतिमताञ्च विलोक्य दरिद्रतां

विधिरहो ! बलवानिति मे मतिः ॥ ९१ ॥

(अन्वयः) गजभुजङ्गमयोः, अपि, बन्धनं, शशिदिवाकरयोः, ग्रह-पीडनं, मतिमतां, दरिद्रतां, च, विलोक्य, अहो !, विधिः, बलवान्, (अस्ति), इति, मे, मतिः (अस्ति) ॥ ९१ ॥

(बालमनोरञ्जनी) गजभुजङ्गमयोः=हस्तिसर्पयोः, अपि, बन्धनं=प्रसृतिः, शशिदिवाकरयोः=चन्द्रार्कयोः, ग्रहपीडनं=राहुपीडनं, मतिमतां=बुद्धि-मतां, दरिद्रतां=दारिद्र्यं, च, विलोक्य=वीक्ष्य । 'अहो' इति वितर्के । विधिः=दैवं, बलवान्=बलिष्ठः, [अस्ति] इति=इत्थं, मे=मम, मतिः=निश्चयः,

अस्तीति शेषः । अत्र श्लोके 'द्वुविलम्बितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणन्वित्यन्
'द्वुविलम्बितमाह नभौ भरो' इति ॥६१॥

(समासः) गजश्च भुजङ्गमश्च गजभुजङ्गमौ तयोः । शशी च दिवाकरश्च
शशिदिवाकरौ तयोः । ग्रहेण पीडनं ग्रहपीडनम् ॥६१॥

(कोषः) दन्ती दन्तावलो हस्ती द्विरदोऽनेको द्विपः । मतङ्गजो गजो
नागः कुञ्जरो वारणः करी । बन्धनं प्रसृतिश्चारः ॥६१॥

(मनोरमा) हाथी और सर्प का बन्धन, चन्द्रमा और सूर्य का राहु
ग्रह द्वारा पीडन, और बुद्धिमानों की दरिद्रता को देख कर मुझे निश्चय होता
है कि दैव ही प्रबल है ॥६१॥

उत्तमजना अप्यल्पायुषो भवन्तीति तान्सृजतो विधेरपि विचार-
शून्यत्वं दर्शयति—

सृजति तावदशेषगुणाकरं

पुरुषरत्नमलङ्करणं भुवः ।

तदपि तत्क्षणभङ्गि करोति चे—

दहह ! कष्टमपण्डितता विधेः ॥९२॥

(अन्वयः) तावत्, (ब्रह्मा) अशेषगुणाकरं, भुवः, अलङ्करणं,
पुरुषरत्नं, सृजति, तत्, अपि, तत्क्षणभङ्गि, करोति, चेत्, अहह !, कष्टं,
(इयं) विधेः, अपण्डिता ॥६२॥

(बालमनोरञ्जनी) तावत्=प्रथमं, (ब्रह्मा) अशेषगुणाकरं=निखि-
लगुणनिधिं, भुवः=पृथिव्याः, अलङ्करणं=भूषणं, शोभाकरमित्यर्थः । पुरुष-
रत्नं=नररत्नं, सृजति=उत्पादयति, ततश्च तत्=नररत्नम्, अपि, तत्क्षणभङ्गि=
तत्क्षणविनाशशीलं, अल्पायुरिति यावत् । करोति=विदधाति, चेत्, अहह !=
हन्त ! कष्टं=कष्टं यथा स्यात्तथा, (इयं) विधेः=ब्रह्मणः, अपण्डितस्य भावोऽ-
पण्डितता=अनैपुण्यम्, अस्तीति । अत्र श्लोके 'द्वुविलम्बितं' नाम वृत्तम् ॥

(समासः) अशेषा ये गुणास्तेषामाकरस्तम् । पुरुषेषु रत्नम् ॥६२॥

(कोषः) अहहेत्यद्भुते खेदे । स्रष्टा प्रजापतिर्वेधा विधाता विश्वसृष्टिविधिः ।

(सरलार्थः) आदौ ब्रह्मा निखिलगुणपरिपूर्णं पृथिव्या अलङ्कारभूतं नररत्नं सृजति, ततश्च तदपि तत्क्षणविनाशशीलं करोति चेत्, हन्त ! कष्टं यदियं ब्रह्मणोऽप्यपण्डितताऽस्तीति ॥६२॥

(मनोरमा) पहले पहल ब्रह्मा सम्पूर्ण गुणों से युक्त पृथिवी के अलङ्कार स्वरूप पुरुषरत्न की सृष्टि करता है । फिर उसे क्षणभङ्गुर कर देता है तो दुःख है कि ब्रह्मा में भी यह मुखता है ॥६२॥

जन्मकाले विधिना ललाटलिखितस्य मार्जने न कोऽपि समर्थ इति
करीरादिदृष्टान्तेन वदति—

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किं
नोल्हकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम् ।

धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणं

यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥६३॥

(अन्वयः) करीरविटपे, यदा, पत्रं, न, एव, (भवति-तर्हि) वसन्तस्य, दोषः, किम् ? यदि, उल्हकः, दिवा, अपि, न, अवलोकते, (तर्हि) सूर्यस्य, दूषणं, किम् ? (तथा) धाराः, चातकमुखे, न, एव, पतन्ति, (तर्हि) मेघस्य, दूषणं, किम् ? (किन्तु) पूर्व, यत्, विधिना, ललाटलिखितं, तत्, मार्जितुं, कः, क्षमः ? ॥६३॥

(बालमनोरञ्जनी) करीरविटपे=करवीरनाम्नि वृक्षे, यदा=यदि, पत्रं=पर्ण, न, एव, (भवति-तर्हि) वसन्तस्य=पुष्पसमयस्य, वसन्तर्तोरिति यावत् । दोषः=अपराधः, किम् ?=नास्तीत्यर्थः । यदि, उल्हकः=धूकः 'उल्ह' इति नाम्ना प्रसिद्धः पक्षिविशेषः, दिवा=दिवसे, अपि, न=नो, अवलोकते=पश्यति, (तर्हि) सूर्यस्य=रवेः, दूषणं=दोषः, किम् ?=नास्तीत्यर्थः । (तथा) धाराः=जलधाराः, चातकस्य='चातक' नाम्नः पक्षिविशेषस्य, मुखे=आगने, न, एव, पतन्ति, (तर्हि) मेघस्य=जलदस्य, दूषणं=दोषः, किम् ? नैवेति भावः ।

(किन्तु) पूर्व=पुरा, जन्मकाल इति यावत् । यत्=अनुकूलं प्रतिकूलं वा, विधिना= ब्रह्मणा, ललाटलिखितं=भाललिखितं, तत्=लिखितं, मार्जितुं= प्रोज्झितुं, दूरीकर्तुमिति यावत् । कः=कः पुरुषः, क्षमः=समर्थः, न कोऽपीत्यर्थः । वसन्तादीनां पत्रसमृद्ध्यादिसाधकत्वेऽपि करीरादिषु पत्राद्यभावे दैवातिरिक्तं कारणं नास्तीत्यतो दैवमेव प्रबलमिति भावः । अत्र श्लोके 'शार्दूल-विक्रीडितं' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं तु पूर्वमेवोक्तम् ॥ ६३ ॥

(समासः) करीरस्य विटपः करीरविटपस्तस्मिन् । चातकस्य मुखं चातकमुखं तस्मिन् । ललाटे लिखितं ललाटलिखितम् ॥ ६३ ॥

(कोषः) करवीरे करीरे तु । उल्लेखे तु वायस्यराति-पेचकौ दिवान्धः क्रोशिको घूको दिवाभीतो निशाटनः । पल्लवोऽस्त्री किसलयं विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम् । पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान् । वसन्ते पुष्पसमयः सुरभिः । ललाटमलिकं गोधिः ॥ ६३ ॥

(सरलार्थः) यदि करवीरवृक्षे पत्रं न भवति तर्हि तत्र वसन्तस्य को दोषः ? यद्युल्लेखो दिवसेऽपि न पश्यति तर्हि तत्र सूर्यस्य को दोषः ? यदि जलधाराश्चातकमुखे न पतन्ति तर्हि जलस्य को दोषः । (नहि कस्यापि अचिदोषः, अपि तु) जन्मकाले विधिना यद्भाललिखितं तत्प्रोज्झितुं कोऽपि समर्थो नास्तीत्यर्थः ॥ ६३ ॥

(मनोरमा) यदि 'करील'—(करजीरी) के पेड़ में पत्ते नहीं होते तो इसमें वसन्त का क्या दोष है ? यदि उल्लेख दिन में भी नहीं देख सकते तो इसमें सूर्य का क्या दोष ? यदि जल की धाराएँ चातक पक्षी के मुख में नहीं पड़ती तो इसमें मेघ का क्या दोष है ? जो पहले ब्रह्मा ने ललाट में लिख दिया है उसको कौन मिटा सकता है ? ॥ ६३ ॥

प्राचीनं कर्म श्लोकद्वयेन प्रशंसति—

नमस्यामो देवान्ननु हतविघेस्तेऽपि वशगा

विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियतकर्मैकफलदः ।

फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किञ्च विधिना

नमस्तत्कर्मभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति ॥ ९४ ॥

(अन्वयः) (वयं) देवान्, नमस्यामः, ननु, ते, अपि, हतविधेः, वशगाः (सन्ति) विधिः, वन्द्यः, (अस्ति) सः, अपि, प्रतिनियतकर्मैकफलदः, फलम्, (अपि) कर्मायत्तम्, (अस्ति तर्हि) अमरगणैः, किं, च, विधिना, किं, विधिः, अपि, येभ्यः, न, प्रभवति, तत्कर्मभ्यः, नमः ॥ ९४ ॥

(बालमनोरञ्जनी) (वयं) देवान्=सुरान्, नमस्यामः=नमस्कुर्मः, अत्र “उपपदविभक्तेः कारकविभक्तिर्वलीयसी” इति नियमाद्द्वितीया । ननु=निश्चितं, ते=देवाः, अपि, हतविधेः=नष्टब्रह्मणः, वशगाः=अधीनाः, (सन्ति) विधिः=ब्रह्मा, वन्द्यः=वन्दनीयः (अस्ति) सः=विधिः, अपि, प्रतिनियतकर्मैकफलदः=शास्त्रनियमितकर्ममुख्यफलप्रदः, फलम्, अपि, कर्मायत्तं=कर्माधीनम् (अस्ति-तर्हि) अमरगणैः=देवसमूहैः, किं=किं फलं, च=तथा, विधिना=विधात्रा, किं=किं प्रयोजनं, किमपि नेत्यर्थः । विधिः, अपि, येभ्यः=यत्कर्मभ्यः, न=नो, प्रभवति=पर्याप्तो भवति, ब्रह्माऽपि कर्माणि परावर्तयितुं समर्थो न भवतीति तात्पर्यम् । अत्र “नमस्स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंबषट्योगाच्च” इति सूत्रेऽलमित्यस्य पर्यायग्रहणाच्चतुर्थी भवतीति बोध्यम् । तत्कर्मभ्यः=तेभ्यः कर्मभ्यः, नमः=नमस्कारः, अस्त्विति शेषः । तस्मात्कारणात्सर्वापेक्षया कर्मण एव प्राबल्यमिति सूचितम् । अत्र श्लोके ‘शिखरिणी’ नाम वृत्ताम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥ ९४ ॥

(समासः) हतश्चासौ विधिर्हतविधिस्तस्य । फलं ददातीति फलदः । प्रतिनियतं यत्कर्म तस्यैकस्य फलदः प्रतिनियतकर्मैकफलदः । कर्मण आयत्तं कर्मायत्तम् । अमराणां गणा अमरगणास्तैः । तानि कर्माणि तत्कर्माणि तेभ्यः ॥

(कोषः) अमरा निर्जरा देवाः ॥ ९४ ॥

(सरलार्थः) वयं देवानामाः, तेऽपि हतविधेरधीनाः सन्ति । ब्रह्मा वन्दनीयः, सोऽपि ब्रह्मा कर्मानुरोधिफलदाताऽस्ति । फलमपि कर्माधीनमस्ति

तदा सुरैर्विधिना च किं प्रयोजनम् । येभ्यः कर्मभ्यो ब्रह्मापि न प्रभवति तेभ्यः कर्मभ्यो नमोऽस्त्वित्यर्थः ॥ ६४ ॥

(मनोरमा) हम जिन देवताओं को नमस्कर करते हैं वे भी विधि के अधीन हैं, इसलिए विधि ही वन्दनीय है, पर वह भी कर्म के अनुसार फल देता है । यदि फल भी कर्म के अधीन है तो इन देवताओं से और विधि से क्या काम ! अतः जिन कर्मों में विधि भी फेर-बदल नहीं कर सकता ऐसे उन कर्मों को नमस्कार है ॥ ६४ ॥

अपि च—

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षितो महासंकटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कारितः
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥ ९५ ॥

(अन्वयः) येन, ब्रह्माण्डभाण्डोदरे, ब्रह्मा, कुलालवत्, नियमितः, येन, विष्णुः, दशावतारगहने, महासङ्कटे, क्षितः, [तथा] येन, रुद्रः, कपालपाणिपुटके, भिक्षाटनं, कारितः, [तथा] सूर्यः, नित्यम्, एव, गगने, भ्राम्यति, तस्मै, कर्मणे, नमः ॥ ६५ ॥

(बालमनोरञ्जनी) येन=येन कर्मणा, ब्रह्माण्डभाण्डोदरे=ब्रह्माण्ड-भाजनमध्ये, ब्रह्मा=विधाता, कुलालवत्=कुम्भकारवत्, नियमितः=जगन्निर्माण-कार्यनिर्णये नियन्त्रितः, नानाविधरचनां कुर्वन् कुम्भकार इव ब्रह्माऽपि नानाविधसृष्टिरचनां करोतीत्यर्थः । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । येन=येन कर्मणा, विष्णुः=नारायणः, दशावतारगहने=मत्स्यादिशदशविधावतारदुःखे, महासङ्कटे=महति सम्बाधे, क्षितः=पातितः, प्रेरित इति यावत् । (तथा) येन=येन कर्मणा, रुद्रः=शिवः, कपालपाणिपुटके=नरकपालहस्तसंपुटके, भिक्षाटनं=भिक्षार्थं भ्रमणं कारितः । अत्र भिक्षाया आधारस्याऽऽवश्यकत्वात्तत्सापेक्षितत्वेन देवदत्तस्य गुरुकुलमित्यादिवत्समासः । (तथा) सूर्यः=दिवाकरः, नित्यम्=

अनिशं, गगने=आकाशे, भ्राम्यति=भ्रमणं करोति, तस्मै=पूर्वोक्ताय कर्मणे, नमः= नमस्कारः, अस्त्विति शेषः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ ६५ ॥

(समासः) ब्रह्माण्डमेव भाण्डं तस्योदरं तस्मिन् । दश अवतारा एव गहनं यस्मिन् तस्मिन् । महच्चासौ सङ्कटं महासङ्कटं तस्मिन् । कपालेन युक्तो यः पाणिपुटस्तस्मिन् । भिक्षायै अटनं भिक्षाटनम् ॥ ६५ ॥

(कोषः) सर्वमावपनं भाण्डं पात्रामत्रं च भाजनम् । पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम् । कुम्भकारः कुलालः स्यात् । "गहनं कलिले त्रिषु । नपुंसकं गह्वरे स्याद्दुःखकाननयोरपि" इति मेदिनी । संकटं ना तु सम्बाधः । नमोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुरवर्त्म खम् ॥ ६५ ॥

(सरत्तार्थः) येन कर्मणा ब्रह्माण्डभाजनमध्ये कुम्भकार इव ब्रह्मा जगन्निर्माणकार्यनिर्णये नियन्त्रितः । येन च भगवान् नारायणो मत्स्यादिदशविधावतारदुःखे महासङ्कटे पातितः । तथा येन शङ्करो नरकपालदुक्ते हस्तपुटके भिक्षार्थं भ्रमणं कारितः । किञ्च सूर्योऽपि येन कर्मणा नित्यमाकाशमण्डले भ्रमणं करोति, एवं विधाय तस्मै कर्मणे नमोऽस्त्वित्यर्थः ॥ ६५ ॥

(मनोरमा) जिसने सारे संसार में कुम्हार की तरह जगत् की सृष्टि करने के लिए ब्रह्मा को नियुक्त किया, जिसने दश अवताररूपी महासंकट में विष्णु को डाल दिया, जिसने भगवान् शंकर को मनुष्य की खोपड़ी लिए हाथ में भिक्षा के निमित्त घर २ घुमाया, और सूर्य को प्रति दिन आकाश में घुमाया करता है, ऐसे उस कर्म को नमस्कार है ॥ ६५ ॥

भाग्यमेव यथासमयं फलति नाऽऽकृत्यादय इति वृक्षोदाहरणपूर्वकमाह —

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलं

विद्याऽपि नैव न च यत्नकृताऽपि सेवा ।

भाग्यानि पूर्वतपसा खलु सञ्चितानि

काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥ ९६ ॥

(अन्वयः) आकृतिः, न, एव, फलति, कुलं, न, एव, शीलं, न, विद्या, अपि, न, एव, च, यत्नकृता, अपि, सेवा, न, पूर्वतपसा, सञ्चितानि, पुरुषस्य, भाग्यानि, काले, फलन्ति, खलु, यथा (काले) एव, वृक्षाः ॥ ६६ ॥

(बालमनोरञ्जनी) आकृतिः=स्वरूपं, न=नो, एव, फलति=उत्तमा।
प्याकृतिः स्वाभीष्टं फलं न जनयतीत्यर्थः । एवमेव 'फलति'इत्यस्य सर्वत्रान्वयः
कार्यः । कुलं=सत्कुलं, न=नो एव, शीलं=सद्बुद्धिं, न, विद्या=सकलशास्त्राभ्यासः,
अपि, न, एव, च=तथा, यत्नकृता=प्रयत्नेन विहिता, अपि, सेवा=शुश्रूषा न,
(किन्तु) पूर्वतपसा=जन्मान्तरोपाजितकृच्छ्रादिकर्मणा, सञ्चितानि=एकत्री-
कृतानि, पुरुषस्य=नरस्य, भाग्यानि=भागधेयानि, काले=यथावसरे, फलन्ति=
फलानि जनयन्ति, ददतीत्यर्थः । खलु=निश्चयेन । तत्रोदाहरणमाह-यथा=येन
प्रकारेण, वृक्षाः=तरवः, काले=यथासमयम्, एव, फलन्ति=फलानि धारयन्ति ।
अन्यत्र नेति भावः । तस्माद्भाग्यमेव सर्वत्र फलति नाऽऽकृत्यादय इति
भावः । अत्र श्लोके 'वसन्ततिलका' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं तूक्तमेव पूर्वम् -

(समासः) यत्नेन कृता यत्नकृता । पूर्वं यत्तपस्तेन ॥ ६६ ॥

(कोषः) आकाराविक्रिताकृती । वरिवस्या तु शुश्रूषा परिचर्याऽ-
प्युपासना ॥ ६६ ॥

(सरलार्थः) आकृतिः, सत्कुलं, शीलं, विद्या, प्रयत्नेन कृता शुश्रूषा
वा नैव फलति, किन्तु यथा वृक्षाः समय एव फलन्ति, तथैव पुरुषस्य पूर्वा-
चरिततपसा सञ्चितानि भाग्यानि, यथासमयं निश्चयेन फलन्तीत्यर्थः ॥ ६६ ॥

(मनोरमा) आकृति नहीं फलती, अच्छा कुल नहीं फलता, शील
नहीं फलता, विद्या एवं प्रयत्न से की गयी सेवा भी नहीं फलती । किन्तु
पुरुषों के पूर्वजन्म की तपस्या से एकत्रित किए गए भाग्य ही फलते हैं ॥ ६६ ॥

पूर्वोपाजितमुकृतानि सर्वत्र पुरुषमवन्तीत्याह—

वने रणे शत्रुजलाग्निमध्ये महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।

सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं वा रक्षन्ति पुण्यानि पुरा कृतानि ॥ ९७ ॥

(अन्वयः) पुरा, कृतानि, पुण्यानि, वने, रण्ये, शत्रुजलाग्निमध्ये, महार्णवे, पर्वतमस्तके, वा, सुप्तं, प्रमत्तं, विषमस्थितं, वा (पुरुषं) रक्षन्ति ॥

(बालमनोरञ्जनी) पुरा=पूर्व, कृतानि=उपार्जितानि, पुण्यानि=सुकृतानि, वने=अरण्ये, रण्ये=संग्रामे, शत्रुजलाग्निमध्ये=अरिवारिवह्निमध्ये, महार्णवे=महासागरे, पर्वतमस्तके=गिरिशिखरे, वा, सुप्तं=निद्रितं, प्रमत्तं=मद्यादिपानेनोन्मत्तं, विषमस्थितं=निम्नोन्नतभूमिस्थितं (पुरुषं) रक्षन्ति=पालयन्ति । तस्मात्पुरुषैः सदा पुण्यमेव सम्पादनीयमिति भावः । अत्र श्लोके 'उपेन्द्रवज्रा' नाम वृत्तम् ॥ ६७ ॥

(समासः) शत्रवश्च जलज्वाभिश्च शत्रुजलाग्न्यस्तेषां मध्ये । महार्णवासागरावौ महार्णवः । पर्वतस्य मस्तकं पर्वतमस्तकं तस्मिन् । विषमे स्थितं विषमस्थितम् ॥ ६७ ॥

(कोषः) स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः । द्विद्विपक्षहिता- मित्रदस्युशात्रवशत्रवः ॥ ६७ ॥

(सरत्कार्थः) पूर्वोपार्जितपुण्यानि वने, संग्रामे, अरिजलाग्निमध्ये, महासमुद्रे, पर्वतशिखरे वा, निद्रितं, प्रमत्तं, निम्नोन्नतभूमौ स्थितं वा पुरुषं पालयन्तीत्यर्थः ॥ ६७ ॥

(मनोरमा) वन में, संग्राम में, शत्रु, जल, अग्नि इन तीनों से, महासागर में, पर्वत के शिखर पर, सोए हुए की, मद्यपान से पागल की, या नीची ऊँची भूमि में रहने वाले पुरुष की पहले के सञ्चित किए हुए पुण्य ही रक्षा करते हैं ॥ ६७ ॥

सत्क्रियैव पुरुषेण कर्तव्येति तत्फलानि प्रदर्शयन्नाह—

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितान्द्वेषिणः

प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।

तामाराधय चक्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितं

हे साधो ! व्यसनैर्गुणेषु विपुलेष्वास्थां वृथा माकृथाः ॥ ९८ ॥

(अन्वयः) या, खलान्, साधून्, करोति, च, मूर्खान्, विदुषः, करोति, द्वेषिणः, हितान्, करोति, परोक्षं, प्रत्यक्षं, कुरुते, हालाहलं, तत्क्षणात्, अमृतं, कुरुते, हे साधो ! वाञ्छितं, फलं, भोक्तुं, भगवतीं, तां, सत्क्रियाम्, आराधय, विपुलेषु, गुणेषु, व्यसनैः, आस्थां, मा कृथाः ॥६८॥

(बालमनोरञ्जनी) या=या सत्क्रिया, खलान्=दुर्जनान्, साधून्=सज्जनान्, करोति=रचयति, च=तथा, मूर्खान्=मूर्खजनान्, विदुषः=पण्डितान्, द्वेषिणः=शत्रून्, हितान्=हितकरान्, करोति, परोक्षम्=अनवलोकितं, प्रत्यक्षं=साक्षात्, कुरुते, हालाहलं=कालकूटं, तत्क्षणात्=क्षणमात्रेण, अमृतं=सुधां, करोति, [तस्मात्] हे साधो ! =हे सज्जन ! वाञ्छितम्=अभिलषितं, फलं=वाञ्छितावासिरूपं फलं, भोक्तुम्=उपभोक्तुं, भगवतीम्=ऐश्वर्यवतीं, तां=पूर्वोक्तां, सत्क्रियां=सत्कर्म, आराधय=सेवस्व, आराधनां कुर्वित्यर्थः । विपुलेषु=सम्पूर्णेषु, गुणेषु=दयादाक्षिण्यादिषु, व्यसनैः=आसक्तिभिः, आस्थां=यत्नं, मा कृथाः=मा कुरु । एवंविधां सत्क्रियां परित्यज्य गुणास्थया तद्विरुद्धो यत्नो न करणीय इति भावः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥६८॥

(कोषः) महाकुल-कुलीनाऽऽर्य-सभ्य-सज्जन-साधवः । पिशुनो दुर्जनः खलः । अज्ञे मूढ-यथाजात-मूर्ख-वैधेय-वालिशाः । पुंसि क्लीबे च काकोल-कालकूट-हलाहलाः ॥६८॥

(सरलार्थः) या सत्क्रिया दुर्जनान्सज्जनान्करोति, मूर्खान्पण्डितान् च करोति, शत्रून् हितकरान् करोति, परोक्षं प्रत्यक्षं कुरुते, क्षणमात्रेण हालाहलममृतं करोति, तस्माद्धे साधो ! स्वाभिलषितफलप्राप्त्यै तामैश्वर्यवतीं सत्क्रियामाराधय । सम्पूर्णेषु गुणेष्वसक्तिभिर्यत्नं मा कुर्वित्यर्थः ॥६८॥

(मनोरमा) जो दुर्जनों को सज्जन, मूर्खों को पण्डित, और शत्रुओं को हितैषी बनाती है, जो अनदेखी बात को प्रकट कराती और क्षणभर में विष को अमृत बनाती है । हे सज्जन ! मनोवाञ्छित फल की प्राप्ति के लिए अपने और कामों को छोड़ो और उसी सत्क्रिया की आराधना करो ॥६८॥

बुद्धिमता पुरुषेण परिणामपर्यन्तं विचार्य कार्यं करणीयमित्याह—
गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ

परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन ।

अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्ते-

र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ॥९९॥

(अन्वयः) आदौ, गुणवत्, वा, अगुणवत्, कार्यं, कुर्वता, पण्डितेन, यत्नतः, परिणतिः, अवधार्या, अतिरभसकृतानां, कर्मणां, विपाकः, आविपत्तेः, हृदयदाही, शल्यतुल्यः, भवति ॥६६॥

(वाल्मनोरञ्जनी) आदौ=प्रथमं, गुणा विद्यन्ते यस्मिंस्तद् गुण-
वत्=गुणयुक्तं, वा=अथवा, अगुणवत्=गुणरहितं, कार्यं, कुर्वता=साधयता,
पण्डितेन=विदुषा, यत्नतः=प्रयत्नतः, परिणतिः=परिणामः, अवधार्या=विचार्या,
आरभ्यमाणस्य कर्मणाः पूर्वमेव परिणामे इदं सुखकरं दुःखकरं वाऽस्तीति
विचारणीयमित्यर्थः । अन्यथापक्षे बाधकमुपस्थापयति—अतिरभसकृतानाम्=
अतित्वराविहितानां, कर्मणां=क्रियाणां, विपाकः=परिणामः, आविपत्तेः=
मरणपर्यन्तं, हृदयं दहतीति हृदयदाही=अन्तःसन्तापकारकः, शल्यतुल्यः=
शङ्कुतुल्यः, भवतीति शेषः । अत्र श्लोके 'मालिनी' नाम वृत्तम् । तल्लक्षण-
न्वित्त्वत्थम्—"ननमग्रययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" इति ॥६६॥

(समासः) अतिरभसेन कृता अतिरभसकृतास्तेषाम् । विपत्तेरा
आविपत्तिस्तस्याः । शल्येन तुल्यः शल्यतुल्यः ॥६६॥

(कोषः) कुल्माषो रभसश्चैव सकटाहः पतद्ग्रहः । वा पुंसि शल्यं
शङ्कुर्ना ॥६६॥

(सरलार्थः) बुद्धिमता पुरुषेण गुणवदगुणवद्वा यत्कार्यं कर्तव्यं तदा-
रम्भात्पूर्वमेव तत्परिणामपर्यन्तं विचार्य करणीयम् । यतोऽतित्वरया कृतानां
कर्मणां परिणामो मरणपर्यन्तमन्तःकरणसन्तापकारी शल्य इव भवतीत्यर्थः ॥

(मनोरमा) बुद्धिमान् पुरुषो को 'यह काम अच्छा है' या बुरा,

इसका परिणाम क्या होगा' ऐसा विचार कर ही कार्य करना चाहिए । क्योंकि जल्दी २ में विना विचारे जो काम किया जाता है, वह मरणपर्यन्त तीक्ष्ण काँटे की भाँति दुःख देता है ॥ ६६ ॥

अस्यां भूमौ जन्म प्राप्य तप एव कार्यं नान्यदित्याह—

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति तिलकणांश्चन्दनैरिन्धनाद्यैः

सौवर्णैर्लाङ्गलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतोः ।

कृत्वा कर्पूरखण्डान्वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्ता-

त्प्राप्येमां कर्मभूमिं न चरति मनुजो यस्तपो मन्दभाग्यः ॥१००॥

(अन्वयः) यः, मनुजः, इमां, कर्मभूमिं, प्राप्य, तपः, न, चरति,

(सः) मन्दभाग्यः, वैदूर्यमय्यां, स्थाल्याम्, इन्धनाद्यैः, चन्दनैः, तिलकणान्, पचति, (तथा) अर्कमूलस्य, हेतोः, सौवर्णैः, लाङ्गलाग्रैः, वसुधां, विलिखति, (तथा) कर्पूरखण्डान्, कृत्वा, कोद्रवाणां, समन्तात्, वृतिम्, इह, कुरुते ॥ १०० ॥

(बालमनोरञ्जनी) यः, मनुजः=मनुष्यः, इमाम्=एनां, कर्मभूमिं=सदा-चरणयोग्यां पृथिवी, प्राप्य=उपलभ्य, तपः=कृच्छ्रचान्द्रायणादि, न=नो, चरति=करोति, (सः) मन्दभाग्यः=भाग्यहीनः, (पुरुषः) वैदूर्यमय्यां=वैदूर्य-प्रचुरायां, स्थाल्यां=पाकभाजने, इन्धनाद्यैः=इन्धनमुख्यैः, चन्दनैः=गन्धसारैः, तिलकणान्=तिलजन्म'खली'नाम्ना प्रसिद्धस्य वस्तुनः कणान्, पचति=विकलेदयति, तिलकणपाचनार्थं स्थालीचन्दनादिसम्पादनं यथा व्यर्थं तथैवा-न्यत्कर्म करोतीत्यर्थः । (तथा) अर्कमूलस्य=अर्कवृक्षमूलस्य, हेतोः=कारणात्, सौवर्णैः=सुवर्णनिमित्तैः, लाङ्गलाग्रैः=हलाग्रैः, वसुधां=धरणीं, विलिखति=कर्षति, अर्कवृक्षमूलस्य सम्पादनाय स्वर्णलाङ्गलेन यथा भूमिखननं व्यर्थमस्ति तथेत्यर्थः । (तथा) कर्पूरखण्डान्=कर्पूरवृक्षशकलानि, कृत्वा=विधाय, कोद्रवाणां=कोदूषाणां, 'कोदो' इति नाम्ना लोके प्रसिद्धानामिति यावत् । सम-न्तात्=अभितः, वृतिम्=आवरणम्, इह=अत्र, कुरुते=विधत्ते, कोद्रवाणां-

रक्षणार्थं कर्पूरवृक्षच्छेदनमिव निष्फलं भवतीत्यर्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूल-
विक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥ १०० ॥

(समासः) कर्मणो भूमिः कर्मभूमिस्ताम् । मन्दं भाग्यं यस्यासौ
मन्दभाग्यः । इन्धनेष्वाद्यानि इन्धनाद्यानि तैः । तिलानां कणास्तिलकणा-
स्तान् । अर्कस्य मूलमर्कमूलं तस्य । कर्पूरस्य खण्डास्तान् ॥ १०० ॥

(कोषः) गन्धसारो मलयजो भद्रश्रीश्चन्दनोऽस्त्रियाम् । लाज्जलं हलम् ।
सर्वसहा वसुमती वसुधोर्वी वसुन्धरा । अथ कर्पूरमस्त्रियाम् । घनसारश्चन्द्रसंज्ञः
सिताब्जो हिमवालुका । कोदूषस्तु कोद्रवः ॥ १०० ॥

(सरलार्थः) यो नरोऽस्यां भारतभूमौ जन्म प्राप्य तपो न चरति, स
मन्दभाग्यो नरो वैदूर्यमय्यां स्थात्यां चन्दनकाष्ठैस्तिलकणान् पचति, तथाऽर्क-
मूलस्य कारणात्सुवर्णनिर्मितैर्हलाप्रैः पृथिवीं कर्षति, तथा च कोद्रवाणां संरक्ष-
णार्थं कर्पूरवृक्षस्य खण्डान् कृत्वाऽऽवरणं कुरुत इत्यर्थः ॥ १०० ॥

(मनोरमा) जो मन्दभाग्य पुरुष इस भारतभूमि पर जन्म लेकर
तपस्या नहीं करता, वह वैदूर्य-मणि की बटलोही में रखकर चन्दन की
लकड़ी से खली (खरी) पकाता है, मदार की रूई उपजाने के लिये सोने के
हल से पृथिवी में जोत लगाता है तथा कर्पूर को तोड़ २ कोदों की रक्षा के
लिए खेत के चारो ओर घेरा बनाता है ॥ १०० ॥

सर्वस्य कर्माधीनत्वात्कृतेऽपि यत्ने यदवश्यम्भावि तद्भवत्येवेति दर्शयन्नाह—

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याः कलाः शिक्षताम् ।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं महा-
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ॥ १०१ ॥

(अन्वयः) महान्, (पुरुषः) अम्भसि, मज्जतु, मेरुशिखरं, यातु,
आहवे, शत्रून्, जयतु, वाणिज्यं, कृषिसेवनादिसकलाः, विद्याः (तथा) कलाः,
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शिक्षतां, प्रयत्नं, कृत्वा, खगवत्, विपुलम्, आकाशं, प्रयातु, (तथापि)
अभाव्यम्, इह, कर्मवशतः, न, भवति, भाव्यस्य, नाशः, कुतः ॥१०१॥

(बालमनोरञ्जनी) महान्=श्रेष्ठः, (पुरुषः) अम्भसि=जले, मज्जतु=
विलीनो भवतु, मेरुशिखरं='मेरु' नाम्नोऽचलस्य शृङ्गं, यातु=गच्छतु, आहवे=
सङ्ग्रामे, शत्रून्=अरीन्, जयतु=विजयं प्राप्नोतु, वाणिज्यं=वणिक्कर्म, कृषिसे-
वनादिसकलाः=अनृतसेवनादिसम्पूर्णाः, विद्याः=शास्त्राणि, कलाः=शिल्पादीन्,
शिक्षतां=अभ्यासं कुर्वतां, शिक्षां प्राप्नोत्विति यावत् । प्रयत्नम्=
उद्योगं, कृत्वा=विधाय, खगवत्=पक्षिवत्, विपुलं=विस्तीर्णम्, आकाशं
=व्योम, प्रयातु=गच्छतु, (तथापि) भवितुं योग्यं भाव्यं न भाव्यम्-
भाव्यम्=भवनायोग्यम्, इह=लोके, कर्मवशतः=कर्माधीनत्वात्, न=नो, भवति,
भाव्यस्य=भावितुमर्हस्य, नाशः=विनाशः, कुतः=कस्मात्, स्यादिति शेषः ।
न कुतश्चिदित्यर्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥१०१॥

(समासः) मेरोः शिखरो मेरुशिखरस्तम् । कृषिसेवनमादिर्यासां ताश्च
सकलास्ताः । कर्मणो वशः कर्मवशस्तस्मात् ॥१०१॥

(कोषः) अम्भोऽर्णस्तोय पानीय-नीर-क्षोराम्बु-शम्बरम् । शिरोऽयं
शिखरं वा ना । द्विङ्-विपक्षाऽहिताऽमित्र-दस्यु-शात्रव-शत्रवः । अभ्यामर्द-
समाघातसंग्रामाभ्यागमाहवाः । अनृतं कृषिः ॥१०१॥

(सरलार्थः) महापुरुषो जले विलीनो भवतु, मेरुशृङ्गं गच्छतु, युद्धेऽ-
रीजयतु, वाणिज्यं तथा कृषिसेवनादिसम्पूर्णा विद्याः कलाश्च शिक्षतां, यत्नं
कृत्वा पक्षिवदाकाशं प्रयातु, तथापि कर्मवशादभाव्यं न भवति, भाव्यस्य
नाशस्तु कुतश्चिदपि न भवतीत्यर्थः ॥१०१॥

(मनोरमा) वड़ा आदमी चाहे जल में डूबे, चाहे मेरु पर्वत की
चोटी पर चला जाय, चाहे संग्राम में शत्रुओं को जीते, वाणिज्य करे, खेती
सेवा आदि करे, सब कला सीखे, आकाश में पक्षियों की भांति उड़े, किन्तु

जो नहीं होने वाला है वह नहीं होगा और जो होने वाला है वह
अवश्य होगा ॥१०१॥

पूर्वसुकृतवशात्पुरुषस्य सर्वमपि सिध्यतीत्याह—

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं

सर्वे जनाः सुजनतामुपयान्ति तस्य ।

कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा

यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ॥१०२॥

(अन्वयः) यस्य, नरस्य, विपुलं, पूर्वसुकृतम्, अस्ति, तस्य, भीमम्,
(अपि) वनं, प्रधानं, पुरं, भवति, (तथा) सर्वे, जनाः, तस्य, सुजनताम्,
उपयान्ति, च, कृत्स्ना, भूः, सन्निधिरत्नपूर्णा, भवति ॥१०२॥

(बालमनोरञ्जनी) यस्य, नरस्य=पुरुषस्य, विपुलं=बहु, पूर्वसुकृतं=
प्राचीनपुण्यम्, अस्ति=विद्यते, तस्य=नरस्य, भीमं=भीष्मम्, अपि, वनम्=
अरण्यं, प्रधानं=श्रेष्ठं, पुरं=नगरं, भवति, (तथा) सर्वे=निखिलाः, जनाः=
लोकाः, तस्य=पुरुषस्य, सुजनस्य भावः सुजनता तां सुजनतां=सौजन्यम्,
उपयान्ति=प्राप्नुवन्ति, च=तथा, कृत्स्ना=सम्पूर्णा, भूः=पृथिवी, सन्निधिरत्नपूर्णा
=उत्तमाकरमणिपरिपूर्णा भवति, पूर्वोपाजितसुकृतेन वसुधाऽन्वर्था सती निध्या-
दिकं प्रयच्छतीत्यर्थः । तस्मात्कारणाच्चरैः पुण्यमेव सम्पादनीयमिति भावः ।
अत्र श्लोके 'वसन्ततिलकं नाम वृत्तम् ॥१०२॥

(समासः) पूर्वस्य सुकृतं पूर्वसुकृतम् । सन्तो निधयो रत्नानि च तैः पूर्णा ।

(कोषः) दारुणं भीषणं भीष्मं घोरं भीमं भयानकम् । विद्वमशेषं
कृत्स्नम् ॥१०२॥

(सरलार्थः) यस्य पुरुषस्य बहु पूर्वजनमोपाजितं सुकृतमस्ति तस्य
पुरुषस्य भयानकमपि वनमुत्तमं नगरं भवति । तथा च सर्वे नागरिकास्तस्य
सौजन्यं प्राप्नुवन्ति, निखिला भूमिरपि सन्निधिरत्नपरिपूर्णा भवतीत्यर्थः ॥१०२॥

(मनोरमा) जिस मनुष्य का पूर्वजन्म का अधिक पुण्य रहता है उस के लिए भयानक जङ्गल भी सुन्दर नगर बन जाता है और उस नगर के तमाम लोग उसके अनुगामी बन जाते हैं और सारी पृथिवी उत्तम निधि और जवाहरातों से परिपूर्ण हो जाती है ॥१०२॥

पुरुषस्य कार्याकार्ये प्रश्नोत्तराभ्यां निर्णयेते—

को लाभो गुणिसङ्गमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः सङ्गतिः

का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ।

कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता किं धनं

विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ॥१०३॥

(अन्वयः) लाभः, कः, ? गुणिसङ्गमः, असुखं, किम् ? प्राज्ञेतरैः, सङ्गतिः, हानिः, का ? समयच्युतिः, निपुणता, का ? धर्मतत्त्वे, रतिः, शूरः, कः ? विजितेन्द्रियः, प्रियतमा, का ? अनुव्रता, धनं, किम् ? अप्रवासगमनं, राज्यं, किम् ? आज्ञाफलम् ॥१०३॥

(बालमनोरञ्जनी) लाभः=अभीष्टसिद्धिः, कः ? गुणिसङ्गमः=गुणवतां सङ्गतिः, पुरुषेण सदा गुणवद्भिरेव सङ्गः कर्तव्य इत्यर्थः । असुखं=दुःखं, किम् ? प्राज्ञेतरैः=मूर्खैः, सङ्गतिः=सङ्गः, पुरुषेण मूर्खैः सह कदापि सङ्गतिर्न कार्येत्यर्थः । हानिः=अलाभः, का ? समयच्युतिः=कार्योचितकालातिवाहनम्, पुरुषेण यथासमयं सावधानेन भाव्यमित्यर्थः । निपुणता=चातुर्यं, का ? धर्मतत्त्वे=धर्मरहस्ये, रतिः=प्रीतिः, सदा पुरुषेण धर्माचरणे रतिः कर्तव्या, नाधर्माचरण इत्यर्थः । शूरः=वीरः, कः ? विजितेन्द्रियः=वशीकृतेन्द्रियः, सदा पुरुषेण जितेन्द्रियेण भाव्यमित्यर्थः । अतिशयेन प्रिया प्रियतमा=अतिप्रिया, स्त्री=भार्या, का ? अनुव्रता=सानुकूला, पुरुषेण सानुकूलायाः स्त्रियः संप्रहः कर्तव्यो नानुकूलाया इत्यर्थः । धनं=वसु, किम् ? विद्या=शास्त्रादिपरिशीलनं, सदापुरुषेण शास्त्रपरिशीलनमेव कार्यमित्यर्थः । सुखम्=प्रानन्दः, किम् ? अप्रवासगमनं=प्रवासगमनाऽभावः, प्रवासगमनं यथा न स्यात्तथा पुरुषेण स्थेयमित्यर्थः ।

राज्यं=भूपता, किम् ? शासनफलं=आज्ञालाभः, येन राज्येनाज्ञा सफला भवे-
तादृशं राज्यं कर्तव्यमित्यर्थः । अत्र श्लोके 'शार्दूलविक्रीडितं' नाम वृत्तम् ॥

(समासः) गुणिनां सङ्गमो गुणिसङ्गमः । प्राज्ञेभ्य इतरैः प्राज्ञेतरैः ।
समयस्य च्युतिः समयच्युतिः । विशेषेण जितानीन्द्रियाणि येन सः । प्रवासस्य
गमनं प्रवासगमनं न प्रवासगमनमप्रवासगमनम् । आज्ञैव फलं यस्य तत् ।

(कोषः) शूरो वीरश्च विक्रान्तः । अववादस्तु निर्देशो निर्देशः
शासनञ्च सः ॥१०३॥

(सरलार्थः) लाभः कः ? गुणिनां सङ्गतिः, दुःखं किम् ? मूर्खजनैः
सह सङ्गतिः, हानिः का ? समयस्य च्युतिः, नैपुण्यं किम् ? धर्माचरणे प्रीतिः,
वीरः कः ? जितेन्द्रियः, अतिप्रिया स्त्री का ? अनुगामिनी, धनं किम् ? शास्त्रा-
भ्यासः, सुखं किम् ? प्रवासगमनाभावः, राज्यं किम् ? शासनलाभ इत्यर्थः ।

(मनोरमा) लाभ का क्या है ? गुणियों की सङ्गति । दुःख क्या है ?
मूर्खों के साथ रहना । हानि क्या है ? अवसर पर चूक जाना । चतुराई क्या
है ? धर्म में लगे रहना । विजयी कौन है ? जिसने इन्द्रियों का दमन किया ।
अच्छी स्त्री कौन है ? जो स्वामी की आज्ञा पालती है । धन क्या है ? विद्या ।
सुख क्या है ? घर पर रहना । राज्य क्या है ? आज्ञाका पालन होना ॥१०३॥

मनस्विनः पुरुषस्य द्वे गती भवत इति मालतीकुसुमोदाहरणपूर्वकं वदति—

मालतीकुसुमस्येव द्वे गतीह मनस्विनः ।

मूर्ध्नि सर्वस्य लोकस्य शीर्यते वन एव वा ॥१०४॥

(अन्वयः) मालतीकुसुमस्य, इव, मनस्विनः, द्वे, गती, भवतः,
सर्वस्य, लोकस्य, मूर्ध्नि, (स्थायते) वा, वने, एव, शीर्यते ॥१०४॥

(बालमनोरञ्जनी) मालतीकुसुमस्य=जातिलतापुष्पस्य, इव, मन-
स्विनः=विवेकिनः, द्वे=द्विसंख्याके, गती=दशे, भवतः=स्तः । 'ह' इति स्फुटा-
र्थम् । तत्र दृष्टान्तमाह—(यथा तेन मालतीकुसुमेन) सर्वलोकस्य=सम्पूर्ण-

जगतः, मूर्च्छि=मस्तके (स्थीयते) वा=अथवा, वने=अरण्ये, एव, शीर्यते=शीर्णेन भूयते, गृहे लोकमान्या भवन्ति वनेऽरण्यवासिनो वा भवन्तीत्यर्थः । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥१०४॥

(समासः) मालत्याः कुसुमं मालतीकुसुमं तस्य ॥१०४॥

(कोषः) सुमना मालती जातिः । स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम् ॥१०४॥

(सरलार्थः) यथा मालतीकुसुमेन सर्वलोकस्य मस्तके स्थीयतेऽथ-वाऽरण्य एव शीर्णेन भूयते, तथैव मनस्व्यपि गृहे सन् सर्वलोकमान्यो भवति वनेऽरण्यवासी वा भवतीति मालतीकुसुमस्येव मनस्विनः पुरुषस्य द्वे दशे भवत इत्यर्थः ॥१०४॥

(मनोरमा) मालती कुसुम की भाँति मनस्वियों की दो ही गतियाँ हैं । मालती पुष्प जैसे या तो सिर पर चढ़ाया जाय या वन में ही मुर्झा जाता है । ठीक इसी तरह मनस्वी जन या तो घर रहकर सबके शिर पर चढ़ जाते हैं या तो वे वनवासी हो जाते हैं ॥१०४॥

पृथिव्यां साधुजनस्थितेर्दौर्भाग्यं वदति—

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः ।

परपरिवादनिवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मण्डिता वसुधा ॥१०५॥

(अन्वयः) अप्रियवचनदरिद्रैः, प्रियवचनाढ्यैः, स्वदारपरितुष्टैः, परपरिवादनिवृत्तैः, वसुधा, क्वचित्, क्वचित्, मण्डिता (अस्ति) ॥१०५॥

(बालमनोरञ्जनी) अप्रियवचनदरिद्रैः=क्रुदवचनदीनैः, मनःसन्तोषकरैर्वचनैर्हानैरित्यर्थः । प्रियवचनाढ्यैः=हितकारकवचनपरिपूर्णैः, स्वदारपरितुष्टैः=स्वस्त्रीसन्तुष्टैः, परपरिवादनिवृत्तैः=परनिन्दापराङ्मुखैः, (एवंविधैः पुरुषैः) वसुधा=पृथिवी, क्वचित्, क्वचित्, मण्डिता=अलंकृता, अस्तीति शेषः ।

एतादृशाः पुरुषाः पृथिव्यामतिदुर्लभा इति भावः । अत्र श्लोके 'आर्या' नाम वृत्तम् ॥

(समासः) न प्रियाण्यप्रियाण्यप्रियाणि च तानि वचनानि अप्रियवचनानि तैर्दरिद्रास्तैः । प्रियाणि च तानि वचनानि प्रियवचनानि तैराढ्यास्तैः । स्वस्य दाराः स्वदारास्ताभिः परितुष्टास्तैः । परेषां परिवादः परपरिवादस्तस्य सकाशाच्चिबृत्ताः परपरिवादनिबृत्तास्तैः ॥१०५॥

(कोषः) भार्या जायाऽथ पुम्भूमिनी दाराः स्यात्कुटुम्बिनी । अवर्णाऽऽक्षेपनिर्वादपरी*वादाऽपवादवत् । वसुधोर्वी वसुन्धरा ॥१०५॥

(सरलार्थः) अप्रियवचनदरिद्राः, प्रियवचनयुक्ताः, स्वस्त्रीसन्तुष्टाः, परकीयनिन्दापराङ्मुखाः, एवंविधाः पुरुषा अतिदुर्लभा इह सन्तीत्यर्थः ॥१०५॥

(मनोरमा) जो अप्रिय वचनों से रहित और प्रिय वचनों से युक्त हैं, जो अपनी स्त्री से सन्तुष्ट और दूसरों की निन्दा करने से पराङ्मुख हैं ऐसे जन इस भूमण्डल पर कहीं कहीं मिलते हैं ॥१०५॥

धीरस्य धीरतां नाशयितुं कोऽपि न शक्नोतीत्यग्निदृष्टान्तेन वदति—

कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते धैर्यगुणाः प्रमार्ष्टुम् ।

अधोमुखस्यापि कृतस्य वहेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१०६॥

(अन्वयः) कदर्थितस्य, अपि, धैर्यवृत्तेः, (पुरुषस्य) धैर्यगुणः, प्रमार्ष्टुं, न, शक्यते, हि, अधोमुखस्य, कृतस्य, अपि, वहेः, शिखा, कदाचित्, एव, अधः, न, याति ॥१०६॥

(बालमनोरञ्जनी) कदर्थितस्य=अतिदुःखितस्य, अपि, धैर्यवृत्ते=धैर्यावलम्बिनः, (पुरुषस्य) धैर्यगुणः=धैर्यरूपो गुणः, प्रमार्ष्टुं=नाशयितुं न=नो, शक्यते=कैरपीति शेषः । तत्रोदाहरणमाह—हि=यतः, अधोमुखस्य=अधोमुखीकृतस्य, अपि वहेः=अग्नेः, शिखा=ज्वाला, कदाचित्=कदा,

* अत्र रकारोत्तरवर्तीकारस्य ह्रस्वत्वेन 'परिवादः' इत्यपि भवतीति बोध्यम् ।

एव=अपि, अधः=अधोभागे, न=नो, याति=गच्छति, किन्तुर्ध्वमेव याति । तस्माद्धीरो जनो दुःखितः सन्नपि धैर्यं न त्यजतीति भावः । अत्र श्लोके 'उप-जाति' नाम वृत्तम् ॥ १०६ ॥

(समासः) धैर्येण वृत्तिर्यस्य तस्य धैर्यवृत्तेः । धैर्यरूपो गुणो धैर्य-गुणः । अधोमुखं यस्य तस्य ॥ १०६ ॥

(कोपः) धृतिधारणधैर्ययोः । अभिर्वैश्वानरो वह्निर्वातहोत्रो धनञ्जयः । वह्नेर्द्रयोर्ज्वालाकीलावर्चिर्हेतिः शिखा स्त्रियाम् ॥ १०६ ॥

(सरलार्थः) अतिदुःखितस्यापि धैर्यवृत्तेः पुरुषस्य धैर्यगुणाः प्रमादुर्कैरपि न शक्यते, यतोऽधोमुखीकृतस्याप्यग्नेर्ज्वाला कदाप्यधोभागे न गच्छति, किन्तुर्ध्वमेव गच्छतीत्यर्थः ॥ १०६ ॥

(मनोरमा) चाहे कितना ही कष्ट मिले, पर धीर पुरुष के धैर्य को कोई भी छुड़ा नहीं सकता । नीचे मुँह की हुई आग की भी ज्वाला कभी नीचे की तरफ नहीं जा सकती ॥ १०६ ॥

धीरपुरुषः सर्वं जगद्वशीकरोतीत्याह—

कान्ताकटाक्षविशिखा न लुनन्ति यस्य

चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ।

कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-

लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥१०७॥

(अन्वयः) यस्य, चित्तं, कान्ताकटाक्षविशिखाः, न, लुनन्ति, कोप-कृशानुतापः, न, निर्दहति, च, भूरिविषयाः, लोभपाशैः, न, कर्षन्ति, सः, धीरः, कृत्स्नम्, इदं, लोकत्रयं, जयति ॥ १०७ ॥

(बालमनोरञ्जनी) यस्य=यस्य पुरुषस्य, चित्तम्=अन्तःकरणं, कान्ताकटाक्षविशिखाः=स्त्रीजनापाङ्गदर्शनरूपबाणाः, न=नो, लुनन्ति=छिन्दन्ति, (तथा यस्य चित्तं) कोपकृशानुतापः=क्रोधाभिसंतापः, न=नो, निर्दहति=

भस्मीकरोति, (तथा यस्य चित्तं) भूरिविषयाः=बहुविषयाः, लोभपाशैः=लोभबन्धनैः, न, कर्षन्ति=आकर्षन्ति, सः=असौ, धीरः=गम्भीरः, (पुरुषः) कृत्स्नं=सम्पूर्णम्, इदम्=एतत्, लोकत्रयं=त्रिलोकं, जयति=वशीकरोति । एतेन धीरतैव सम्पादनीया न कामादय इति सूचितम् । अत्र श्लोके 'वसन्त-तिलका' नाम वृत्तम् । तल्लक्षणं पूर्वमेवोक्तम् ॥१०७॥

(समासः) कान्तायाः कटाक्षाः कान्ताकटाक्षास्त एव विशिखाः कान्ता-कटाक्षविशिखाः । कोप एव कृशानुस्तस्य तापः कोपकृशानुतापः । भूरि च ते विषया भूरिविषयाः । लोभ एव पाशा लोभपाशास्तैः । त्रयोऽवयवा यस्य तत्त्रयं लोकाणां त्रयं लोकत्रयम् ॥१०७॥

(कोषः) प्रमदा मानिनी कान्ता ललना च नितम्बिनी । कटाक्षोऽपाङ्ग-दर्शने । पृष्ठकबाणविशिखा अजिह्वागखगाशुगाः । कृशानुः पावकोऽनलः ॥१०७॥

(सरलार्थः) यस्य पुरुषस्यान्तःकरणं स्त्रीजनापाङ्गदर्शनविशिखा न छिन्दन्ति, कोपाग्निसन्तापो न भस्मीकरोति, तथा बहवो विषया लोभबन्धनैर्नाऽऽकर्षन्ति, स धीरपुरुषः सम्पूर्णमिदं लोकत्रयं वशीकरोतीत्यर्थः ॥१०७॥

(मनोरमा) जिनके हृदय स्त्रियों के कटाक्षरूपी बाणों से घायल नहीं होते, और कोपरूपी अग्नि के ताप से जल नहीं जाते, जिनको अनेकों विषय-लोभ रूपी फाँस में फँसा नहीं पाते, ऐसे वे धीर पुरुष तीनों लोक को अपने वश में कर लेते हैं ॥१०७॥

एक एव शूरः पुरुषः कृत्स्नं जगज्जयतीति सूर्यदृष्टान्तपूर्वकं प्रदर्शयति—

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।

क्रियते भास्करेणैव स्फारस्फुरिततेजसा ॥१०८॥

(अन्वयः) स्फारस्फुरिततेजसा, भास्करेण, इव, एकेन, अपि, शूरेण, महीतलं, हि, पादाक्रान्तं, क्रियते ॥१०८॥

(बालमनोरञ्जनी) स्फारस्फुरिततेजसा=विस्तीर्णदीप्यमानदीप्त्या, भास्करेण=सूर्येण, इव, एकेन=अद्वितीयेन, शूरेण=वीरेण, महीतलं=धरातलं, पादाक्रान्तं=चरणव्याप्तं (पक्षे-किरणव्याप्तं) क्रियते=विधीयते । यथा सूर्यः स्वपादैः सम्पूर्णं जगद्व्याप्तं करोति तथैव शूरः पुरुषः स्वपादाभ्यामाक्रान्तं करोतीति भावः । अत्र श्लोके 'अनुष्टुप्' नाम वृत्तम् ॥ १०८ ॥

(समासः) स्फारं स्फुरितं तेजो यस्य तेन । मद्यास्तलं महीतलम् । पादेन पक्षे पादैराक्रान्तम् ॥ १०८ ॥

(कोषः) शूरो वीरश्च विक्रान्तः । भास्कराऽहस्कर-ब्रह्म-प्रभाकर-विभाकराः ॥ १०८ ॥

(सरलार्थः) यथा विस्तीर्णेन देदीप्यमानेन च तेजसा सूर्यः स्वकिरणैर्धरणीतलमाक्रान्तं करोति । तथैव एक एव वीरः पुरुषः स्वपादेन सर्व-जगद्व्याप्तं करोतीत्यर्थः ॥ १०८ ॥

(मनोरमा) जैसे सूर्य फैली हुई एवं प्रदीप्त अपनी किरणों से सारी पृथिवी को व्याप्त कर लेता है । उसी प्रकार एक ही वीर पुरुष अपने पैरों से सारे संसार को वश में कर लेता है ॥ १०८ ॥

लोकवत्सलभशीलवतः पुरुषस्य सर्वेऽप्यनुकूला भवन्तीत्याह—

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणा-

न्मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरङ्गायते ।

व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते

यस्याङ्गेऽखिललोकवत्सलभतमं शीलं समुन्मीलति ॥१०९॥

(अन्वयः) यस्य, अङ्गे, अखिललोकवत्सलभतमं, शीलं, समुन्मीलति, तस्य, वह्निः, जलायते, (तथा) जलनिधिः, कुल्यायते, तत्क्षणात्, मेरुः, स्वल्पशिलायते, मृगपतिः, सद्यः, कुरङ्गायते, व्यालः, माल्यगुणायते, विषरसः, पीयूषवर्षायते ॥ १०९ ॥

(बालमनोरञ्जनी) यस्य=यस्य पुरुषस्य, अङ्गे=शरीरे, अखिललोक-
 वल्लभतमं=निखिलभुवनप्रियतमं, शीलं=सद्गुणं, समुन्मीलति=समुज्जृम्भते,
 तस्य=तस्य पुरुषस्य, वह्निः=अग्निः, जलायते=जलमिवाचरति, उष्णस्वभा-
 वोऽपि जलवच्छीतलं भवतीत्यर्थः । अत्र “कर्तुः क्यङ् सलोपश्च” इति
 सूत्रेणाऽऽचारार्थे क्यङ् बोध्यः । एवमत्रोऽपि बोध्यम् । (तथा) जलनिधिः=
 समुद्रः, कुल्यायते=कुल्येवाचरति, दुस्तरोऽपि समुद्रः सुतरो भवतीत्यर्थः । तत्क्ष-
 यात्=क्षणमात्रात्, मेरुः=पर्वतः, स्वल्पशिलायते=स्वल्पशिलेवाचरति, महानपि
 मेरुः स्वल्पपाषाणसदृशो भवतीत्यर्थः । मृगपतिः=सिंहः, सद्यः=तत्कालमेव, कुरङ्गा-
 यते=हरिणायते, अतिकूरोऽपि मृगपतिः स्वीयं क्रौर्यं त्यजतीत्यर्थः । व्यालः=
 सर्पः, माल्यगुणायते=मालागुण इवाचरति, अतिकूरोऽपि व्यालः स्वकीयं
 क्रौर्यं त्यजतीत्यर्थः । विषरसः=गरलरसः, पीयूषवर्षायते=अमृतवर्षणमिवाचरति
 स्वीयं घातकं गुणं त्यजतीत्यर्थः । अत्र श्लोके ‘शार्दूलविक्रीडितं’ नाम वृत्तम् ॥

(समासः) अतिशयेन वल्लभं वल्लभतमम् । अखिलाश्च ते लोका
 अखिललोकास्तेषां वल्लभतमम् । जलस्य निधिर्जलनिधिः । मृगाणां पतिर्मृ-
 गपतिः । विषश्चासौ रसो विषरसः ॥ १०६ ॥

(कोषः) कुल्याऽल्पा कृत्रिमा सरित् । पाषाण-प्रस्तर-प्रावोपलश्मानः
 शिला दृषत् । मृगे कुरङ्ग-वातायु-हरिणाजिनयोनयः । आशीविषो विषधरश्चक्रो
 व्यालः सरीसृपः । अभीष्टेऽभीप्सितं ह्ययं दयितं वल्लभं प्रियम् ॥ १०६ ॥

(सरलार्थः) यस्य पुरुषस्य शरीरावयवेऽखिललोकप्रियं सद्गुणतममस्ति
 तस्य कृते वह्निर्जलमिव शीतलं भवति, समुद्रः कृत्रिमसरिदिव भवति, महा-
 नपि मेरुपर्वतो लघुर्भवति, सिंहः सपदि हरिणसदृशो भवति, अतिकूरोऽपि
 सर्पो मालेव भवति, विषरसोऽमृतमिव भवतीत्यर्थः ॥ १०६ ॥

(मनोरमा) जिसमें लोकप्रिय शील रहता है, उसके लिये आग जल
 की तरह ठण्डी पड़ जाती है । समुद्र नहर बन जाता है, पर्वत छोटी शिला
 की भाँति छोटा बन जाता है । सिंह तुरत हरिण, सर्प माला बन जाता है ॥

तेजस्विनः पुरुषाः स्वकीयां प्रतिज्ञां न त्यजन्तीति स्वजननीदृष्टान्तेन
वदति—

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-

मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्त्तमानाम् ।

तेजस्विनः सुखमसूनपि संत्यजन्ति

सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ॥११०॥

(अन्वयः) सत्यव्रतव्यसनिनः, तेजस्विनः, (पुरुषाः) सुखम्, असून,
अपि, संत्यजन्ति, पुनः, लज्जागुणौघजननीम्, अत्यन्तशुद्धहृदयाम्, अनुवर्त्त-
मानां, स्वां, जननीम्, इव, प्रतिज्ञां, न, संत्यजन्ति ॥११०॥

(बालमनोरञ्जनी) सत्यव्रतव्यसनिनः=सत्यव्रतानुरागिणः, तेज-
स्विनः=प्रभाववन्तः, (पुरुषाः) सुखं=सानन्दं, सहर्षमिति यावत् । असून=
प्राणान्, अपि, संत्यजन्ति=त्यागं कुर्वन्ति, पुनः=किन्तु, लज्जागुणौघजननीम्=
असत्कर्मप्रवृत्तिलक्षणलज्जारूपगुणसमूहोत्पादिकाम्, अत्यन्तशुद्धहृदयाम्=अति-
पवित्रान्तःकरणम्, अनुवर्त्तमानाम्=अनुलक्ष्यवर्त्तमानां, स्वां=स्वकीयां, जननीं
=मातरम्, इव, प्रतिज्ञाम्=‘इदमेव नान्यदि’ त्यादिरूपं प्रणम् । सत्यभा-
षिभिः पुरुषैरसर्वोऽपि त्याज्याः, किन्तु स्वप्रतिज्ञा कदापि न त्याज्येति भावः ।
अत्र श्लोके ‘वसन्ततिलका’ नाम वृत्तम् ॥११०॥

(समासः) सत्यमेव व्रतं तस्मिन् व्यसनं येषां ते । लज्जारूपो यो
गुणौघस्तस्य जननी ताम् । अत्यन्तं शुद्धं हृदयं यस्य यस्यां वा ताम् ॥११०॥

(कोषः) मन्दाक्षं हीनपा व्रीडा लज्जा । समूहो निवहं-व्यूहं-सन्नेह-
विसर-व्रजाः । स्तोमौघ-निकर-व्रात-वार-संघात-सञ्चयाः । जनयित्री प्रसूर्मता
जननी । पुंसि भूम्यस्यैव प्राणाश्चैवम् । नियमो व्रतमस्त्री । ‘प्रतिज्ञा प्रणः’
इति कोशान्तरम् ॥११०॥

(सरलार्थः) सत्याभिभाषिणो जनाः सहर्षं प्राणानपि त्यजन्ति किन्तु

लज्जारूपगुणसमूहजनयित्रीमत्यन्तशुद्धान्तःकरणामनुलक्ष्य वर्तमानां स्वकीयां
मातरमिव प्रतिज्ञां न परित्यजन्तीत्यर्थः ॥११०॥

(मनोरमा) सत्यप्रेमी जन सुखपूर्वक प्राणों को छोड़ देते हैं, परन्तु
लज्जारूपी गुण समूहको उत्पन्न करने वाली और अतिशय शुद्ध हृदय वाली
लक्ष्यस्थित अपनी माता की भांति अपनी प्रतिज्ञाको कभी नहीं छोड़ते ॥११०॥

इति स्व० कमलाकान्तशास्त्रिविरचितया 'बालमनोरञ्जनी' नाम्न्या
संस्कृतटीकया 'मनोरमा'ऽऽख्यया हिन्दीटीकया च समलंकृतं

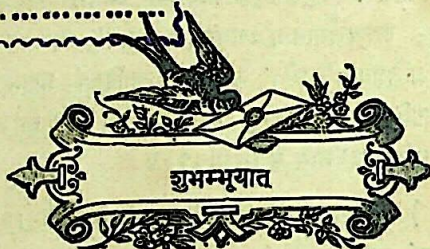
श्रीमद्भर्तृहरिविरचितं नीतिशतकं समाप्तम् ।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय

ग्रन्थाख्या

आगत क्रमांक..... 272

दिनांक.....



❀ मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय ❀

वीर भद्रा ।

आगत क्रमांक..... 0035

दिनांक..... 15/5/80

* परीक्षोपयोगिपुस्तकानि *

अपरीक्षित कारक—सम्पूर्ण भा० टी०	1)
अमरकोष—प्रथमकाण्ड सटिप्पण, भा० टी०	2)
" —सम्पूर्ण, सटिप्पण	3)
" — " भाषा टीका	4)
विद्यार्थिवन्धुकोष—	5)
लघुकौमुदी—बालमनोरमा टीका सहित	6)
शब्दरूपमहोदधि—	7)
संस्कृतशिक्षा—पं० श्रीकनकलाल शर्मा कृत प्रथमभाग	8)
" — " द्वितीयभाग	9)
" — " तृतीयभाग	10)
" — " चतुर्थभाग पूर्वाङ्क	11)
अबकहंड़ाचक्र—(संवत्, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, तिथि राशि, ग्रह, नक्षत्रका पञ्चाङ्गो- पयोगी ज्ञान)	12)
गणितमुक्तावली—	13)
गणितसोपान—	14)

परिवर्तित नियमावली के सम्पूर्ण ग्रन्थों का

एकमात्र प्राप्तिस्थान—

मास्टर खेलाड़ीलाल ऐण्ड सन्स,

संस्कृत बुकडिपो,

कचौड़ीगली, बनारस सिटी ।

2

